एकेश्वरवाद की वास्तविकता

लेखक
मौलाना अमीन अहसन इस्लाही
अनुवादक
रैहान अहमद सिद्दीक़ी
पुनरीक्षण एंव संशोधनकर्ता
मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ,
नसीम ग़ाज़ी,
कौसर लईक़

विषय-सूची

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।)

प्रस्तावना

हमने अपनी पुस्तक 'शिर्क की हक़ीक़त' (बहुदेववाद की वास्तविकता) में वादा किया था कि एकेश्वरवाद (तौहीद) के प्रमाणों का वर्णन हम एक अलग पुस्तक में करेंगे। यह उस वादे की पूर्ति है। अब ये दोनों पुस्तकें 'ला इला-ह इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं) की व्याख्या के लिए, अगर अल्लाह ने चाहा, तो पूर्णतः पर्याप्त होंगी। हमारा उद्देश्य इन पुस्तकों के लेखन से केवल यह नहीं है कि तौहीद (एकेश्वरवाद), रिसालत (ईशदूतत्व) और आख़िरत (परलोक) के बौद्धिक एवं पुस्तकीय प्रमाणों का उल्लेख कर दिया जाए। बल्कि एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि ये तथ्य जिन प्रमाणों के साथ क़ुरआन मजीद में आए हैं उन प्रमाणों को स्पष्ट किया जाए, ताकि धर्म के इन बुनियादी विषयों की शिक्षा के साथ-साथ लोगों के लिए क़ुरआन के समझने का रास्ता भी खुले। मुझे आशा है कि जो लोग इस पूरे सिलसिले का ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे वे क़ुरआन की उस तर्क-विधि की कुँजी पा जाएँगे जो हमारे तर्क-शास्त्रियों की पैदा की गई समस्त उलझनों से पूर्णतः मुक्त है और मानव-बुद्धि से सीधे अपील करती है, तथा उनका मन-मस्तिष्क क़ुरआन की तर्क-विद्या से परिचित हो जाएगा और वे इस महान ग्रन्थ के बड़े भाग से लाभ उठा सकेंगे, जिसके केवल कुछ ही संकेत इन पृष्ठों में समाहित हो सके हैं।

अल्लाह और उसके गुणों के सम्बन्ध में क़ुरआन ने जो कुछ कहा है और जिन प्रमाणों के साथ कहा है, उन सबका विवरण बहुत विस्तार चाहता था। मैंने अत्यन्त लघु मार्ग अपनाया है, फिर भी प्रत्येक अध्याय में वे ज़रूरी बातें बयान कर दी हैं, जो स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक थीं। भविष्य में यदि इन पृष्ठों के पुनरावलोकन का अवसर मिला तो, इनशा अल्लाह, इस संक्षेप को विस्तृत रूप देने का प्रयास करूँगा।

आधुनिक दर्शन ने दिलों में जो सन्देह के काँटे चुभोए हैं, मैंने क़ुरआन की

रोशनी में उनको एक-एक करके निकालने का यत्न किया है। अब इस बात का फ़ैसला पाठक कर सकेंगे कि इस प्रयास में मुझे सफलता मिली है या नहीं, और यदि मिली है तो कहाँ तक मिली है? मुझे केवल इतनी आशा है कि जिन लोगों को वास्तव में एकेश्वरवाद की धारणा के संबंध में कोई उलझन है, और वे सुलझाना चाहते हैं तो उनको इस पुस्तक से विशेष लाभ होगा। किन्तु जिन लोगों का सन्देह या इनकार केवल "न मानने की इच्छा" पर निर्भर करता है, उनके रोग का इलाज किसी इनसान के बस की बात नहीं है; ईश्वर ही चाहे तो उनका रोग दूर हो सकता है।

इन पृष्ठों में जो बातें सही और हितकर हैं उन सबका कारण ईश-अनुकम्पा है जिसकी कृपा से मुझे उस्ताद इमाम मौलाना हमीदुद्दीन फ़राही (रह०) से लाभान्वित होने का अवसर मिला, और जो बातें ग़लत हैं, वे मेरी समझ की कमी और अल्प ज्ञान का परिणाम हैं। अल्लाह तआला उन्हें क्षमा करे।

—लेखक

प्रवेश

प्रस्तुत पुस्तक हमारी पुस्तक 'शिर्क की हक़ीक़त' की पूरक है। 'शिर्क की हक़ीक़त' (बहुदेववाद की वास्तविकता) में हमने शिर्क की हक़ीक़त को इतने विस्तार से बयान किया है कि तौहीद की हक़ीक़त (एकेश्वरवाद की वास्तविकता) उसमें स्वयं निखर कर सामने आ गई है। वस्तुएँ अपनी प्रतिकूल वस्तुओं से स्पष्ट होती हैं, अब तौहीद की व्याख्या के लिए किसी अलग पुस्तक की ज़रूरत बाक़ी नहीं रह गई थी, किन्तु 'शिर्क की हक़ीक़त' (बहुदेववाद की वास्तविकता) में मूलतः बहुदेववाद के भेद और उसकी शाखाओं का विस्तृत वर्णन अभीष्ट था, इस कारण उसमें एकेश्वरवाद के प्रमाणों के वर्णन की गुंजाइश न निकल सकी। यह पुस्तक इस कमी को पूरा कर देगी और ये दोनों पुस्तकें मिलकर अब, इनशा अल्लाह, बहुदेववाद और एकेश्वरवाद के सम्बन्ध में पूर्णतः पर्याप्त होंगी।

एकेश्वरवाद के प्रमाणों पर विचार करने से पहले कुछ बातों को भूमिका के रूप में सामने रखना अत्यन्त आवश्यक है।

क़ुरआन के सर्वप्रथम सम्बोधित लोग

क़ुरआन मजीद के सर्वप्रथम सम्बोधित लोगों में से कोई गिरोह भी, ख़ुदा का इनकार करनेवाला न था। उनमें बनी इसमाईल (इसमाईल की सन्तान), जो न सिर्फ़ यह कि ईश्वर को मानते थे बल्कि ईश्वर के संबंध में उसके बहुत-से उच्च गुणों को भी स्वीकार करते थे। उनके अन्दर जो विधर्मिता पाई जाती थी, वह ईश्वर के इनकार के कारण न थी, बल्कि कुछ ऐसी बातों को मानने या न मानने के कारण थी जिनसे ईश्वर के गुणों या गुणों की अपेक्षाओं का स्वतः इनकार हो जाता था, या उन गुणों और गुणों की अपेक्षाओं में दूसरों की साझेदारी अनिवार्य होती थी। बनी इसमाईल के अतिरिक्त क़ुरआन के सर्वप्रथम सम्बोधित लोगों में बनी इसराईल थे जो ईश्वर और उसके सभी उत्तम गुणों को मानते थे और उनकी अपेक्षित चीज़ों और उनके परिणामों को भी स्वीकार करते थे, किन्तु साथ ही वे कुछ ऐसी धारणा और कर्म-सम्बन्धी पथभ्रष्टता में पड़ गए थे जो उनके स्वीकृत अक़ीदों के बिल्कुल प्रतिकूल थीं और जिनसे या तो ईश्वर का इनकार ही हो जाता था या बहुदेववाद आ जाता था। अतः क़ुरआन मजीद ने इन दोनों गिरोहों से

उनको नास्तिक समझते हुए वार्ता नहीं की है, बल्कि उनकी मान्यताओं को आधार बनाकर उनकी उन बातों का खण्डन किया है जो उन्होंने उन मान्यताओं के बिल्कुल प्रतिकूल बातें अपने अन्दर एकत्रित कर ली थीं।

यह हाल क़ुरआन के केवल आरम्भिक सम्बोधित लोगों ही का न था, बल्कि जैसा कि हमने अपनी पुस्तक 'शिर्क की हक़ीक़त' में वर्णन किया है कि दुनिया की प्राचीन जातियों में ईश्वर का इनकार बहुत कम पाया जाता है। भूतकालीन समस्त जातियों में किसी न किसी प्रकार से एक पूज्य की धारणा अवश्य पाई जाती है। यह अलग बात है कि इस धारणा के चतुर्दिक ऐसे अन्धविश्वासों का प्राचीर है कि न तो उससे इस विश्व की पहेली को सुलझाने के लिए कोई प्रकाश मिलता है और न आस्था (ईमान) और सद्कर्म की बुनियादें मज़बूत होती हैं। फिर भी यह सत्य है कि ईश्वर का इनकार, जो वास्तव में एक स्पष्ट तथ्य का इनकार है, केवल वर्तमान युग की उपज है। इस प्रकार के भ्रम एवं सन्देह की अवधारणा अगर इतिहास में कभी प्रकट भी हुई है तो वह केवल एक छोटे-से दायरे में सीमित रही है, एक विधिवत् धर्म की हैसियत इसने केवल वर्तमान युग में प्राप्त की है।

क़ुरआन की तर्क-पद्धति

यही कारण है कि क़ुरआन ईश्वर के अस्तित्त्व के प्रमाणीकरण के बारे में हमारे मीमांसकों की पद्धति पर स्रष्टा के अस्तित्त्व के प्रमाण से अपनी वार्ता का आरम्भ नहीं करता। अगर वह ऐसा करता तो उसका सम्पूर्ण सम्बोधन तत्कालीन अपेक्षाओं से बहुत दूर और प्रभावकारी वाणी के गुणों से वंचित हो जाता। और वह परिपक्व तत्वदर्शिता जिसने हृदयों और आत्माओं में एक हलचल पैदा कर दी, एक शुष्क व प्रभावहीन मीमांसकीय शास्त्रार्थ का रूप धारण कर लेती और वाणी का बड़ा भाग नितान्त असंगत और अनावश्यक हो जाता। अतः क़ुरआन ने अपने सम्बोधितों की मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में उनपर दलील क़ायम की और उनके अभिमतों और उनकी धारणाओं में जो ग़लती और टेढ़ थी वह उनके सामने खोलकर रख दी कि या तो वे विशुद्ध और सुस्पष्ट सत्य को स्वीकार कर लें और अगर उससे इनकार करें तो हठधर्मी और अज्ञान के प्रति पक्षपात के अतिरिक्त उनके लिए कोई और शरण लेने की जगह बाक़ी न रह जाए।

लेकिन चूँकि ईश्वरत्व का विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यह धर्म का केन्द्र और ईमान का स्रोत है, जब तक यह सिरा हाथ न आ जाए उस समय तक न इस जगत की पहेली हल हो सकती है, न व्यक्ति का कोई क़दम आगे उठ सकता है, न सत्य

और असत्य तथा भलाई और बुराई के सिद्धान्त की स्थापना सम्भव है। फिर यह कि क़ुरआन मजीद शाश्वत मार्गदर्शक ग्रन्थ है, किसी जाति-विशेष या युग-विशेष से जुड़ा नहीं है। इसको मानव-जाति की समस्त गुमराहियों का क़ियामत तक के लिए इलाज करना है, इसलिए इसने इस विषय में एक ऐसी संग्राहक वर्णन-शैली अपनाई जिससे एक ओर अल्लाह के समस्त पूर्णतम गुणों, जैसे-सृजन, दया, ज्ञान, सामर्थ्य, न्याय, बुद्धिमत्ता आदि से मुक्त होना सिद्ध हो, ताकि उन लोगों पर दलील क़ायम हो सके जो किसी न किसी प्रकार से किसी पूज्य की अवधारणा तो रखते हैं, लेकिन उसके वास्तविक गुणों की धारणा से वंचित हैं और दूसरी ओर उन लोगों पर भी दलील क़ायम हो सके जो सिरे से ईश्वर के अस्तित्त्व ही को नहीं मानते।

अतः क़ुरआन में ईश्वरत्व का दावा, सम्बोधित लोगों के परिप्रेक्ष्य में, तीन भिन्न रूपों में प्रकट हुआ है, एक रूप वह है जो पूर्णतः इनकार करनेवालों के लिए तर्क और दलील है। उनके लिए जगह-जगह पर एकेश्वरवाद से सम्बद्ध वार्ता ऐसी संग्राहक शैली में प्रस्तुत की गई है कि इससे ईश्वर का होना भी प्रमाणित होता है और यह बात भी सिद्ध होती है कि वह अकेला है। दूसरा रूप उन लोगों के लिए अपनाया गया है जो ईश्वर को तो मानते हैं लेकिन उसके उत्तम गुणों की धारणा ग्रहण करने में चूक गए हैं। उनके सामने ईश्वर को उत्तम गुणों से सुसज्जित होने को प्रमाणित करने के लिए वार्त्ता प्रस्तुत की गई है। तीसरे वे लोग हैं जो ईश्वर को संपूर्ण गुणों से सुसज्जित तो मानते हैं, लेकिन साथ ही उसके सम्बन्ध में कुछ विरोधाभासी कर्मों और धारणाओं में ग्रस्त हैं। उनके समक्ष उन बातों का खण्डन किया गया है जो उन्होंने अपनी स्वीकृत आस्था के बिल्कुल प्रतिकूल अपने अन्दर एकत्रित कर ली है।

तर्कों के उपर्युक्त प्रथम दो प्रकार के सम्बोधित प्रायः बनी इसमाईल हैं, यद्यपि वे ईश्वर का इनकार नहीं करते थे; लेकिन ईश्वर के गुणों के सम्बन्ध में उनका मन-मस्तिष्क अत्यन्त उलझा हुआ था। इसलिए क़ुरआन ने उनके सामने एकेश्वरवाद से सम्बद्ध वार्ता इस प्रकार की है कि स्रष्टा के अस्तित्त्व के बारे में भी उनको विश्वास और बोध प्राप्त हो सके और उसके गुणों की अवधारणा में भी उनके मन-मस्तिष्क की समस्त उलझनें दूर हो जाएँ। अतः उनको सम्बोधित करके क़ुरआन ने जो कुछ कहा है वह क़ियामत तक उन सभी गिरोहों के लिए अकाट्य प्रमाण है जो ईश्वर का इनकार करनेवाले और नास्तिक हैं या ईश्वर के विषय में जिनके मन में उलझनें हैं। तीसरे प्रकार के तर्क के सम्बोधितजनों

में वास्तव में बनी इसराईल हैं, जो तौरात और इंजील पर ईमान रखने के दावेदार थे लेकिन उन्होंने बहुत-सी बातें अपने सर्वमान्य सिद्धान्तों के बिल्कुल विपरीत मान रखी थीं। उनपर जिस ढंग से दलील क़ायम की गई है, वह क़ियामत तक उन समस्त गिरोहों के लिए अकाट्य प्रमाण है जो ईश्वर के गुणों और उनकी अपेक्षाओं के विषय में किसी व्यावहारिक व धारणात्मक विरोधाभास में ग्रस्त हों। कुछ स्थानों पर इस प्रकार के तर्कों के सम्बोधित बनी इसमाईल भी हैं, किन्तु इसकी एक विशेष सीमा है जिसका विस्तृत विवरण ईश्वर ने चाहा तो आगे आएगा।

क़ुरआनी तर्कों का आधार

इसी प्रकार क़ुरआनी प्रमाणीकरण के आधार और उसके स्रोत को भी समझ लेना नितान्त आवश्यक है। क़ुरआन के तर्क या तो सम्बोधित के इक़रार पर आधारित होते हैं, या फिर ऐसे स्थाई सिद्धान्तों पर क़ायम होते हैं जो सम्बोधित की स्वीकृति या अस्वीकृति से बिलकुल परे होते हैं। फिर इस दूसरे प्रकार के तर्क के दो उपभेद हैं। या तो इन तर्कों का स्रोत ख़ुद इनसान के अन्तःकरण में है या वाह्य जगत में, पहले को आन्तरिक तर्क कहेंगे और दूसरे को बहिर्गत तर्क। ये सब मिलाकर क़ुरआनी प्रमाणीकरण के तीन भेद हुए।

(1) पहला वह प्रमाणीकरण जो विरोधी की स्वीकार की हुई बातों या आक्षेपों पर आधारित है। इसके कई पहलू हैं। उदाहरणतः जो जातियाँ किसी उपास्य को मानती हैं उनके लिए अनिवार्य है कि उन समस्त गुणों और बातों को मानें जिनको यह शब्द अपने में समाहित किए हुए है, या जो जातियाँ उपास्य के मौलिक गुणों को मानती हैं उनके लिए ज़रूरी है कि उन गुणों को भी मानें जो इन गुणों को अपेक्षित हैं तथा उन गुणों से उनको मुक्त करें जो इन गुणों के प्रतिफल हैं। बिल्कुल इसी तरह इन गुणों को मानने से व्यक्ति पर जो ज़िम्मेदारियाँ और कर्तव्यों का पालन अनिवार्य होता है उनको भी स्वीकार करें, साथ ही जो जातियाँ कोई आसमानी ग्रन्थ रखती हैं या अपने पीछे कोई इतिहास रखती हैं या अपने समाज में भलाई-बुराई का कोई नैतिक नियम रखती हैं, उनके लिए ज़रूरी है कि उनकी बुनियादी सच्चाइयों से, उनकी मान्यता प्राप्त बातों से, और उनके स्पष्ट तार्किक परिणामों से मुँह न मोड़ें। ऐसा करना अपने स्वीकार किए हुए दावे से हटना और स्वयं अपने मुँह से अपने आपको झुठलाना है।

(2) दूसरे प्रकार के प्रमाण लौकिक हैं। इसके भी विभिन्न पहलू हैं। सबसे

पहले वे क़ानून हैं जिनकी अनुभूति इस जगत् में प्रत्येक क्षण हो रही है, और जिनसे एक ख़ुदा और उसके उन समस्त गुणों की गवाही मिल रही है जो क़ुरआन ने ख़ुदा के लिए बयान की हैं। फिर वे क़ानून हैं जो इस विश्व की घटनाओं-दुर्घटनाओं और जातियों के उत्थान-पतन में कार्यान्वित दिखाई देते हैं, और जो वास्तव में इन्हीं गुणों को प्रकट करते हैं, जिनसे विश्व स्रष्टा विभूषित है।

(3) तीसरे प्रकार के प्रमाण आन्तरिक प्रमाण हैं। इनका स्रोत वास्तव में ख़ुद इनसान की अन्तरात्मा है और इससे हमारा तात्पर्य वह नैसर्गिक बोध और विश्वास है जो धरती व आकाश के स्रष्टा ने अन्तरात्मा में निहित कर रखी है। इसके कुछ पहलू पूर्णतः स्पष्ट हैं और हम बराबर उनका अनुभव करते हैं, और कुछ ऐसे हैं जो असावधान और मन्द बुद्धिवाले इनसानों की नज़रों से कभी-कभी ओझल हो जाते हैं, किन्तु प्रकृति विभिन्न परीक्षाओं में डाल-डालकर उन्हें उन पहलुओं के प्रति सचेत करती रहती है।

क़ुरआन ने अपने तर्कों के इन तीनों स्रोतों का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—

> "हम उनको अपने प्रमाण बाह्य जगत् में और स्वयं उनके अन्दर दिखाएँगे, यहाँ तक कि उनपर स्पष्ट हो जाए कि वही सत्य है। क्या तेरे प्रभु के लिए यह बात पर्याप्त नहीं है कि वह प्रत्येक वस्तु को देख रहा है। जान लो! वे अपने रब से मिलने के बारे में सन्देह रखते हैं। सुन लो! वह प्रत्येक वस्तु को घेरे में लिए हुए है।"
>
> (क़ुरआन, 41 : 53-54)

क़ुरआन की इस आयत में 'बदले का दिन' और 'क़ियामत' का दावा पेश किया गया है। इसके पक्ष में पहले ब्रह्माण्ड (वाह्य) के प्रमाणों का हवाला दिया है, फिर अन्तरात्मा (आन्तरिक) के प्रमाणों का वर्णन किया है। फिर अल्लाह तआला के गुणों के द्वारा प्रमाणित किया गया है, जिनको या तो सम्बोधित स्वीकार करता है या उन गुणों को स्वीकार करता है जिनपर ये गुण निर्भर करते हैं।

इससे अधिक स्पष्ट उदाहरण यह है—

> "और धरती में निशानियाँ हैं विश्वास करनेवालों के लिए और तुम्हारी अन्तरात्माओं में भी हैं, क्या तुम्हें दिखाई नहीं देती हैं? और आकाश में तुम्हारी आजीविका है और वह चीज़ भी जिसकी तुम्हें धमकी सुनाई जा रही है। अतः आकाश और धरती के रब की सौगन्ध! यह बात घटित होकर रहेगी, बिल्कुल उसी तरह जिस तरह तुम्हारे लिए एक बात का बोल देना।"
>
> (क़ुरआन, 51 : 20-23)

यहाँ भी इस बात का दावा किया गया है कि सज़ा या इनाम अवश्य मिलकर रहेगा। इन आयतों से ऊपर (क़ुरआन में) इसी दावे पर आकाश व धरती की गवाहियाँ पेश की हैं, जिनसे अत्यन्त स्पष्ट रूप में सिद्ध होता है कि इस विश्व के स्रष्टा की पसन्द यह नहीं हो सकती कि वह इस दुनिया को पैदा करके यूँ ही छोड़ दे। इस ब्रह्माण्ड की रीतियों और क़ानूनों तथा इसकी ऐतिहासिक घटनाओं और उनके हालात एवं परिणाम इस बात की गवाही दे रहे हैं कि बदले का एक दिन अवश्य आनेवाला है जिस दिन दुष्कर्मी लोग अपनी बुराइयों का बदला पाएँगे और सदाचारियों को उनकी भलाइयों का पुरस्कार मिलेगा। फिर एक व्यापक एवं अर्थगर्भित बात बताई कि आकाश और धरती और तुम्हारी अन्तरात्मा में इसके प्रमाण मौजूद हैं। ये बाह्य और आन्तरिक प्रमाणों की ओर इशारा है। इसके बाद आकाश और धरती के रब की क़सम गवाही के रूप में खाई गई है और अपने मूल दावे को अपनी प्रभुता एवं पालन-क्रिया के द्वारा प्रमाणित किया है।

ये दो उदाहरण क़ुरआन मजीद से हमने केवल यह दिखाने के लिए पेश किए हैं कि क़ुरआन ने अपने तर्क के आधारों को ख़ुद बता दिया है। बाक़ी रही यह बात कि इन तीनों स्रोतों से क़ुरआन ने अपने आधारभूत दावों—तौहीद, रिसालत और आख़िरत (एकेश्वरवाद, ईशदूतत्व और परलोकवाद) को किस-किस तरह प्रमाणित किया है तो इसका विस्तृत वर्णन प्रसंगानुसार आएगा। यहाँ हमारा उद्देश्य संक्षेप में क़ुरआनी प्रमाणों के आधारों की ओर इशारा करना था।

आवश्यक चेतावनी

किन्तु हमारी इस वार्ता से किसी को ग़लतफ़हमी न हो कि हमने जिस तरह क़ुरआन की दलीलों को अलग-अलग क़िस्मों में बाँट दिया है, उसी तरह क़ुरआन में इनका वर्णन भी अलग-अलग है। बल्कि जिस तरह आपने देखा कि सम्बोधित व्यक्ति को दृष्टि में रखते हुए क़ुरआन की तर्क-शैली और उसके तार्किक आधार में परिवर्तन हुए हैं उसी तरह सम्बोधित व्यक्ति के बदलने ही के कारण इस वर्णन-शैली की अपेक्षाएँ भी बदलती रहती हैं। कहीं केवल सम्बोधित व्यक्ति की मान्यताओं पर वार्ता की गई है, कहीं मानव के अंतःकरण के प्रमाण दिए गए हैं, कहीं वाह्य जगत् का अवलोकन कराया गया है, कहीं उनमें से दो को मिला दिया गया है और कहीं तीनों को एकत्रित कर दिया गया है। इसी तरह बुनियादी दावे में भी कहीं संयुक्तता पाई जाती है, कहीं असंयुक्तता और कहीं तो केवल तौहीद के लिए तर्क है, कहीं केवल आख़िरत के लिए, कहीं ये दोनों एकत्र कर दिए गए

हैं और कहीं तीनों तौहीद, आख़िरत, रिसालत को एकत्रित कर दिया गया है। इनमें अन्तर करना और परखना एक दृष्टिवान समालोचक का काम है। फिर क़ुरआन में तर्क देने का तरीक़ा बिल्कुल स्वाभाविक है। इस कारण जो लोग तर्क और दृष्टि के केवल कृत्रिम तरीक़ों ही के अभ्यस्त हैं, वे क़ुरआनी तर्क-शैली की मौलिक शक्ति को समझने में असमर्थ रह जाते हैं और तरह-तरह की ग़लतफ़हमियों और कुधारणाओं में फँस जाते हैं।

कुछ अज्ञानी यह समझते हैं की मज़हब की सम्पूर्ण नींव 'आदेश' एवं निर्देश पर है जो बात प्रकाशना से मालूम हो गई वह सत्य है, उसका कोई प्रमाण हो या न हो। निस्सन्देह ईमान रखनेवालों के लिए अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) का कह देना ही प्रमाण है। लेकिन मज़हव ईमानवालों के अन्दर ही नहीं, इनकार करनेवालों के अन्दर भी उतारना है और उनके लिए अल्लाह और रसूल का कहना कोई प्रमाण नहीं, जब तक कि उस आदेश का आधार कोई ठोस, बौद्धिक और स्वाभाविक सत्य न हो। अतः क़ुरआन ने, जैसा कि ऊपर स्पष्ट हो चुका है, आन्तरिक जगत् और वाह्य जगत् को तर्कों के स्रोत के रूप में प्रयोग किया है और प्रत्येक अध्याय में वाह्य और आंतरिक नियमों के साथ हरेक विषय में अपने दावों की अनुकूलता दिखाई है, और बार-बार यह बात स्पष्ट की है कि जिन बातों की गवाही ब्रह्माण्ड के कोने-कोने से मिल रही है और मानव-प्रकृति जिन हक़ीक़तों पर गवाही दे रही है, क़ुरआन उन्हीं हक़ीक़तों की ओर बुलाता है। इसलिए अत्यन्त आवश्यक है कि दीन की आधारभूत बातों के बारे में क़ुरआन के इन तर्कों को समझने की कोशिश की जाए, ताकि ईश्वरीय विधान (शरीअत) और वाह्य एवं आन्तरिक जगत् की पारस्परिक अनुकूलता के रहस्य उद्घाटित हो सकें और जो लोग क़ुरआन के तर्क एवं बौद्धिकता की ओर से बदगुमान हैं उनकी बदगुमानी दूर हो।

इस भूमिका में इन बातों की चेतावनी इसलिए ज़रूरी थी कि जो लोग क़ुरआन के प्रथम सम्बोधित व्यक्तियों के विभिन्न समुदायों और उनकी विशेषताओं तथा परिस्थितियों से भली-भाँति अवगत नहीं हैं, या क़ुरआन की तर्क-शैली में सम्बोधित व्यक्तियों का जितना ध्यान रखा गया है, उसके उस महत्व से अनभिज्ञ हैं, या उन आधारों को नहीं जानते जिनपर क़ुरआन का तर्क निर्भर करता है। और जो यह समझते हैं कि क़ुरआन की सम्पूर्ण तर्क-योजना अटकल पर आधारित है और प्रत्यारोपण जैसी है और इसका दार्शनिक ठोस प्रमाणों से कोई सम्बन्ध नहीं हैं, उनके ये भ्रम दूर हो जाएँ और क़ुरआन के समझने का मार्ग उनके लिए प्रशस्थ हो सके। मुसलमानों में जो लोग यूनानी ज्ञान और दर्शन से प्रभावित हुए, वे इसी बदगुमानी के

कारण क़ुरआन की समझ से वंचित रहे। वे या तो क़ुरआन की ओर आए ही नहीं और अगर आए तो इस रत्न की खान को (अल्लाह क्षमा करे) कूड़ाघर समझकर आए, यहाँ उनको केवल प्रत्यारोपण और अभिषाणात्मक शैली के तर्कों की आशा थी, उन्हें स्पष्ट प्रमाण के रत्नकणों की आशा न थी। क़ुरआन के बारे में इसी प्रकार की कुधारणा में इस युग के वे मुसलमान भी ग्रस्त हैं जो आधुनिक दर्शन और विज्ञान से प्रभावित हैं। उनको साधारणतः यह भ्रम है कि क़ुरआन मजीद के तर्क केवल औसत दर्जे के मस्तिष्कों को अपील कर सकते हैं, विशिष्ट व्यक्ति और उच्च बौद्धिक शक्ति रखनेवाले बुद्धिमानों की समझ से इसके तर्क (अल्लाह क्षमा करे) निम्नकोटि के हैं। इन लोगों की ग़लतफ़हमी का कारण अधिकतर यह है कि वे न तो क़ुरआनी तर्कों के आधारों से परिचित हैं और न इस बात से अवगत हैं कि सम्बोधित लोगों की दृष्टि से वह तर्क किन विभिन्न रूपों में से प्रकट हुआ है। हम इस पुस्तक में चाहते हैं कि एकेश्वरवाद से सम्बंधित क़ुरआनी तर्कों को स्पष्ट करें, ताकि दीन (धर्म) अकाट्य और सम्पूर्ण प्रमाणों के साथ स्पष्ट हो।

इस पुस्तक में वार्ता-क्रम इस प्रकार अपनाया गया है :

एकेश्वरवाद के सामान्य प्रमाण

1. बहिर्जगत् के प्रमाण
2. अन्तर्जगत् के प्रमाण

एकेश्वरवाद के विशिष्ट प्रमाण

3. वे प्रमाण जो सम्बोधित लोगों की मान्यताओं को दृष्टि में रखकर दिए गए।
4. पिछले अध्यायों का सारांश।
5. एकेश्वरवाद (तौहीद) के प्रभाव : व्यक्ति और समाज पर।
6. धर्म में तौहीद (एकेश्वरवाद) का महत्त्व।

यह पुस्तक चूँकि 'शिर्क की हक़ीक़त (बहुदेववाद की वास्तविकता) का पूरक है, इस कारण इसके अध्ययन से पहले उसका अध्ययन आवश्यक है। इस पुस्तक का उद्देश्य केवल एकेश्वरवाद के प्रमाणों का स्पष्टीकरण है, शेष बहसें जो इस विषय से सम्बन्धित हैं, विस्तार के साथ 'शिर्क की हक़ीक़त' में आ चुकी हैं। अल्लाह तआला से दुआ है कि जो बातें क़लम से हक़ निकली हैं, उनको दिलों में जगह दे, और जहाँ कहीं कोई भूल-चूक हुई है उसके प्रभाव को मिटा दे।

— लेखक

एकेश्वरवाद के सामान्य प्रमाण

1. बहिर्जगत् के प्रमाण

यह दुनिया जो हमारी आँखों के सामने फैली हुई है, विविध पक्षों से न सिर्फ़ एक कार्य-कारण श्रृंखला पर बल्कि एक ऐसे वास्तविक पूज्य के अस्तित्व का साक्ष्य प्रस्तुत कर रही है जो सभी उच्चतम गुणों से विभूषित है। इस साक्ष्य का आधार ऐसी बातों पर है जिनका हम बहिर्जगत् में अवलोकन करते हैं और जिनके बारे में हमारी बुद्धि और हमारी प्रकृति बाध्य करती है कि हम उनको किसी ऐसी सत्ता से सम्बद्ध करें जो उनका स्रोत हो सके। इन बातों को क़ुरआन की भाषा में 'आयतुल्लाह' (अल्लाह की निशानियाँ) कहा गया है। हम इस अध्याय में आवश्यकता के अनुसार उनकी व्याख्या करेंगे।

(क) जगत् का सौन्दर्य

सबसे पहली चीज़ जो हमारी दृष्टि को आकर्षित करती है वह इस जगत् का सौन्दर्य है जो हर कोने में अपनी सज-धज के साथ विराजमान है। हम देखते हैं कि इस दुनिया की कोई चीज़ भी सादा और बेरंग नहीं है। आकाश से लेकर धरती तक कोई चप्पा ऐसा नहीं, जहाँ से इनसान असावधान और बेपरवाह गुज़र सके। हर जगह उसके दिल को खींचने, उसकी आँखों को जगाने और उसके कानों को खोलने के लिए मनमोहक दृश्य, स्पष्ट छवि और मधुर स्वर मौजूद हैं और साथ ही इनसान के मन में सौन्दर्य-बोध की तीव्रता रख दी गई है। इसलिए जब वह अपने आस-पास अनुपम सौन्दर्य के ये रंगारंग दृश्य देखता है तो सहसा उसके अन्दर उसके सृजनहार के बारे में प्रश्न पैदा हो जाता है, क्योंकि वह यह कल्पना करने से बिल्कुल असमर्थ है कि इतनी मनोहर वस्तुओं से सुसज्जित यह दुनिया अपने आप अस्तित्व में आ गई, और अगर उसपर पाशविक मन्दबुद्धि हावी नहीं होती तो वह सहसा ही पुकार उठता है—

"बड़ी ही बरकतवाला है अल्लाह जो सर्वोत्तम स्रष्टा है।"

(क़ुरआन, 23 :14)

अर्थात् केवल इसी बात का एहसास नहीं होता कि इस ब्रह्माण्ड का एक स्रष्टा है, बल्कि इससे आगे बढ़कर यह एहसास पैदा होता है कि वह सर्वश्रेष्ठ

स्रष्टा है, सर्वथा भलाई ही भलाई है। उसने जो चीज़ भी बनाई है वह पूर्ण सामर्थ्य, पूर्ण कारीगरी और पूर्ण कल्याण और भलाई का नमूना है।

"वही है जिसने जो चीज़ भी बनाई ख़ूब ही बनाई।" (क़ुरआन, 32 : 7)

स्पष्ट है कि दुनिया अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए इन समस्त रंगारंग सुन्दरताओं की मुहताज न थी। सम्भव था कि यह धरती होती, लेकिन उसमें ये बाग़-बग़ीचे, ये ऊँचाइयाँ और गहराइयाँ, ये घाटी और पर्वत नहीं होते। सम्भव था कि यह वातावरण होता, लेकिन उसमें ठण्डी मंद हवा के झोंके और चिड़ियों के चहचहे न होते। सम्भव था कि यह आकाश होता मगर ये तारों का झुर्मुट, ऊषा का सौन्दर्य और इन्द्रधनुष की रंगारंगियाँ न होतीं। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बल्कि हम देखते हैं कि यह दुनिया इन समस्त दृश्यों से सुसज्जित है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों है? क़ुरआन कहता है कि यह इसलिए है कि इनसान की आन्तरिक संवेदन-शक्ति को जागृत की जाए और उसमें यह दृष्टि उत्पन्न हो कि ऐसी सुन्दर और सुडौल दुनिया बिना किसी स्रष्टा के अस्तित्व में नहीं आ सकती और वह स्रष्टा, मात्र स्रष्टा ही नहीं, बल्कि पूर्ण सामर्थ्य, पूर्ण कारीगरी और तत्वदर्शिता और उच्चतम उपकार एवं कल्याण के गुणों से विभूषित है :

"क्या उन्होंने अपने ऊपर आकाश को नहीं देखा, कैसा हमने उसको ऊँचा किया और सजाया, और कहीं उसमें दराड़ नहीं और धरती को हमने बिछाया, और उसमें गाड़ दिए पर्वत, और उगाई उसमें हर प्रकार की ख़ुशनुमा चीज़। आँखें खोल देने और याद दिलाने के लिए प्रत्येक ध्यान देनेवाले बन्दे के दिल में।"

(क़ुरआन, 50 : 6-8)

यह सम्भव नहीं है कि कोई व्यक्ति आकाश व धरती के इन दृश्यों को देखे और यूँ ही गुज़र जाए। अगर आँखें खुली हुई हों तो इस दुनिया का अवलोकन स्वतः इनसान में ख़ुदा और उसके अच्छे गुणों के प्रति विश्वास पैदा करता है। इसी हक़ीक़त की ओर क़ुरआन की इस आयत में संकेत किया गया है—

"भला देखो तो उस आग को जिसको सुलगाते हो! क्या तुमने उसके वृक्ष को उगाया है या हम उसके उगानेवाले हैं? हमने उसको बनाया है याद दिलाने और लाभ उठाने की चीज़, यात्रियों और ज़रूरतमन्दों के लिए।"

(क़ुरआन, 56 : 71-73)

आयत का अन्तिम भाग विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। इससे सिद्ध होता है कि इस दुनिया की चीज़ें केवल हमारी किसी भौतिक आवश्यकता ही को पूरा नहीं करतीं, बल्कि उनमें से प्रत्येक के सृजन में सौन्दर्य और उत्तम कारीगरी का ऐसा प्रदर्शन है कि वे आपसे आप एक उत्कृष्ट और उच्चतम वास्तविकता पर

ईमान लाने और उसे स्वीकार करने के लिए सचेत भी करती हैं और सचेत करना उनका मात्र गौण उद्देश्य नहीं है, बल्कि उनका वास्तविक अस्तित्वगत कार्य यही है। इसी लिए आयत में 'तज़किर:' (याद दिलाना) का शब्द 'मताअ' (लाभ उठाने की चीज़) के शब्दों से पहले है, जिससे विदित होता है कि उनका असली उद्देश्य याद दिलाना है, लाभप्रद सामग्री होना उनका एक अतिरिक्त लाभ है। जिन लोगों की आन्तरिक अनुभूति जागृत होती है उनको वस्तुओं का यही पहलू सबसे अधिक स्पष्ट नज़र आता है। लेकिन जिनकी प्रकृति विकृत हो जाती है और खाने और संभोग के सुख की प्राप्ति के अतिरिक्त उनके सामने कोई और उच्च उद्देश्य नहीं रह जाता, उनकी आँखें सूक्ष्मदर्शी यंत्रों और दूरदर्शी यंत्रों से सुसज्जित होने के उपरांत भी, इसी सत्य को देखने से असमर्थ रह जाती हैं जो वास्तव में प्रत्येक वस्तु में सबसे अधिक उभरा हुआ है। इसी लिए क़ुरआन ने ऐसे लोगों को पशुओं की उपमा दी है और उनके बारे में फ़रमाया है कि उनके कान हैं लेकिन सुनते नहीं, आँखें हैं लेकिन देखते नहीं, दिल हैं लेकिन समझते नहीं।

ये रंगारंग दृश्य, जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है, केवल एक कार्य-कारण श्रृँखला की गवाही ही नहीं देते, बल्कि एक ऐसे स्रष्टा की गवाही देते हैं जो सौन्दर्य और पूर्णता के गुणों से विभूषित है। क्योंकि हम केवल यही नहीं देखते कि यह दुनिया बनी है, बल्कि यह देखते हैं कि जो चीज़ भी बनी है वह ख़ूब बनी है, जिससे यह सिद्ध होता है कि वह पूर्ण स्रष्टा है, तत्वदर्शी है, सर्वशक्तिमान है, ज्ञान से परिपूर्ण है, अत्यन्त दयावान है, उदारचेता है। उसने हमें जैसा-तैसा पैदा नहीं कर दिया है बल्कि उत्तम आकृति, उत्तम क्षमताओं और उत्तम योग्यताओं के साथ पैदा किया है —

"और हमने इनसान को अच्छे से अच्छे हिसाब से पैदा किया।"

(क़ुरआन, 95 : 4)

और फ़रमाया :

"ऐ मनुष्य, किस चीज़ ने तुझे अपने उस उदार प्रभु की ओर से धोखे में डाल दिया जिसने तुझे पैदा किया, तुझे नख-शिख से ठीक-ठाक किया, तुझे संतुलित बनाया और जिस रूप में चाहा तुझको जोड़कर तैयार किया।" (क़ुरआन, 82 : 6-8)

उसने पेट भरने के लिए हमें केवल अनाज ही नहीं दिया, बल्कि आनन्द लेने के लिए फल और तरह-तरह के मेवे भी पैदा किए और सूंघने तथा देखने का आनन्द लेने के लिए फूल भी खिलाए और बाग़ भी उगाए —

"धरती को उसने सारी सृष्टि जन के लिए बनाया। उसमें हर प्रकार के बहुत-से स्वादिष्ट फल हैं, खजूर के वृक्ष हैं जिनके फल ग़िलाफ़ों में लिपटे हुए हैं। तरह-तरह

के अनाज हैं जिनमें भूसा भी होता है और दाना भी।" (क़ुरआन,55 : 10-12)

स्पष्ट है कि यह केवल सृजन नहीं, बल्कि उत्तम सृजन और उत्तम सामर्थ्य है। केवल प्रदान करना नहीं, बल्कि दयाभाव, उदारता और करुणा के साथ प्रदान करना है, केवल जीवित रखना नहीं है, बल्कि इस तरह पालना है जो उत्तम पालनहारी व परवरदिगारी की शान है।

यह वह परिणाम है जो इस ब्रह्माण्ड के भागों के सौन्दर्य के अवलोकन करने से हमारे सामने आता है। लेकिन जब हम इन पृथक-पृथक भागों के अस्तित्व से हटकर मेल से बने इस सुन्दर ऐक्य अर्थात् इस संयोजित संसार के सौन्दर्य को देखते हैं तो हमपर एक और वास्तविकता स्पष्ट होती है, वह यह कि इस विश्व का स्रष्टा और प्रबन्धक एक ही है, कोई और उसका साझी और हिस्सेदार नहीं है। यह विश्व आकाश से लेकर धरती तक ऐसी सजी-सजाई महफ़िल है जिसकी हर चीज़ अपनी-अपनी जगह से समष्टि के सौन्दर्य में अभिवृद्धि कर रही है। जिस तरह हम एक सुन्दर, संतुलित और उत्तम आकृति की चीज़ को देखकर अनिवार्यतः इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि वह एक ही सुरुचिपूर्ण सत्ता एवं क्रियाशील प्रभावशाली हाथ की कारीगरी का चमत्कार है, अगर इसके विभिन्न भागों और अंशों का निर्माण विभिन्न कारीगरों के विभिन्न संकल्पों के अन्तर्गत हुआ होता तो यह संतुलन और यह सौन्दर्य इसमें पैदा न हो सकता, इसी तरह इस पूर्ण संसार की सुन्दरता का जो व्यक्ति अवलोकन करता है, वह अनिवार्यतः इस परिणाम पर पहुँचता है कि यह केवल एक ही की पसन्द और एक ही का इरादा है जो इन समस्त रंगारंगियों के अन्दर कार्यरत है। अगर विभिन्न पसंदें और अलग-अलग इरादे इसके अन्दर कार्यरत होते तो प्रथमतः इसकी स्थापना ही असम्भव थी और अगर इसकी स्थापना मान भी ली जाए तो यह एक सुसज्जित महफ़िल की जगह एक माल गोदाम बल्कि किसी कबाड़िए की दुकान की शक्ल में होती और एक सौन्दर्यपूर्ण ऐक्य के स्थान पर हम इसको अत्यन्त भयानक रूप में देखते। जहाँ हर चीज़ अव्यवस्थित, असंबद्ध और बेजोड़ होती। क्योंकि विभिन्न इरादों और अभिरुचियों के टकराव के साथ संतुलन का अस्तित्व असंभव है। क़ुरआन ने इस वास्तविकता की ओर इतना अधिक ध्यानाकर्षित किया है कि इसके साक्ष्य उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है।

(ख) ब्रह्माण्ड के विभिन्न भागों के मध्य समन्वय

दूसरा महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य पहलू इस जगत् के विभिन्न खण्डों की आपसी अनुकूलता और पारस्परिक सामंजस्य है। इस संसार की विभिन्न वस्तुओं

में, जो परस्पर एक-दूसरे से विपरीत लक्षित होती हैं, उसी प्रकार का सामंजस्य और अनुकूलता पाई जाती है, जिस प्रकार का सामंजस्य और अनुकूलता हम स्त्री-पुरुष के जोड़े में देखते हैं। एक स्त्री अपने वाह्य व आन्तरिक रूप में पुरुष से पूर्णतः भिन्न होती है। इसी प्रकार एक पुरुष स्त्री से बिल्कुल भिन्न गुण एवं विशेषताएँ रखता है, तदपि दोनों एक-दूसरे के साथ जैसा घनिष्ट आत्मिक व शारीरिक संयोग रखते हैं, वह विदित है। स्त्री के पास जो कुछ है वह पुरुष को न केवल यह कि वांछित और प्रिय है बल्कि अगर स्त्री न हो तो पुरुष का अस्तित्व और उसकी शक्तियों एवं योग्यताओं का बड़ा भाग बिल्कुल निरर्थक हो जाता है। इसी प्रकार पुरुष के पास जो कुछ है, वह स्त्री की इच्छाओं और आवश्यकताओं का मानो उत्तर है। यहाँ तक कि अगर पुरुष के अस्तित्व को विलुप्त मान लिया जाए तो स्त्री की विशेषताएँ व गुणों का सिरे से कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। ठीक यही हाल इस विश्व के समस्त भिन्न खण्डों का है। धरती व आकाश, रात व दिन, गर्मी व सर्दी, प्रकाश व अंधकार, उष्णता व शीतलता, सब स्त्री-पुरुष के जोड़े की भांति परस्पर भिन्नता के साथ-साथ अत्यंत घनिष्ट संबंध भी रखते हैं। हद यह है कि स्त्री व पुरुष में से जिस तरह एक का अकेला अस्तित्व निरर्थक है, उसी तरह इन समस्त भिन्न खण्डों में से हर चीज़ अपने जोड़े के बिना बिल्कुल उद्देश्यहीन हो जाती है। कोई भी चीज़ अपने उद्देश्य को पूरा ही उस समय करती है जब वह अपने जोड़े से मिलती है।

सामंजस्य का यह पहलू हम केवल परस्पर विरोधी वस्तुओं ही में नहीं पाते, बल्कि इस विश्व की व्यवस्था पर विचार करने से मालूम होता है कि इसमें एक व्यापक सामंजस्य और अनुकूलता विद्यमान है। प्रत्येक वस्तु अपने जीवन को बचाए रखने और अपने अस्तित्व के विकास के लिए इस पर निर्भर है कि यह पूरा कारखाना उसके लिए कार्यरत रहे। गेहूँ का एक पौधा अस्तित्व में आकर उस समय तक अपनी पूर्णता को नहीं पहुँच सकता, जब तक इस जगत् के समस्त तत्व उसके पालन-पोषण एवं निगरानी में अपनी-अपनी भूमिका न निभाएँ। धरती उसके पालन हेतु अनुकूलता उत्पन्न करे, बादल उसके लिए नमी प्रदान करे, सूरज उसको गर्मी प्रदान करे, ओस उसको ठण्डक पहुँचाए, हवाएँ उसको लोरियाँ दें। जब यह सब कुछ एक ख़ास नियम और व्यवस्था के साथ हो ले, तब कहीं जाकर गेहूँ का एक दाना खेत से खलियान तक पहुँचता है, और यही हाल इस दुनिया की एक-एक वस्तु का है।

अब प्रश्न यह है कि क्या इस विश्व का विकास अपने आप हो रहा है, या इसके पीछे एक प्रबंधक सत्ता है जो इन समस्त विभिन्न खण्डों के मध्य अनुकूलता

और सामंजस्य पैदा करती है और उनको विकसित करती है? अगर यह मान भी लिया जाए कि यह दुनिया एक आकस्मिक घटना है, अपने आप अस्तित्व में आ गई है और इसके विभिन्न खण्डों का विकास भी अपने आप हो रहा है, तो क्या इसके विभिन्न तत्वों के अन्दर अनूकूलता और सामंजस्य का पैदा हो जाना भी एक आकस्मिक घटना है? क्यां कोई बुद्धिमान एक क्षण के लिए भी यह विश्वास कर सकता है कि हवा, पानी, आग, मिट्टी, नदियाँ, पहाड़, सूरज, चाँद, पशु, पक्षी सब आकस्मिक घटनाओं के परिणामस्वरूप प्रकट हो गए हैं और प्रत्येक का अपने आप विकास हुआ, फिर बिल्कुल संयोगवश उनमें यह आश्चर्यजनक अनुकूलता पैदा हो गई और फिर बिल्कुल संयोगवश ही ये सब इनसान के लिए भी न सिर्फ़ अनुकूल बल्कि उसके सेवक बन गए? क्या मानव-बुद्धि इस तरह के अश्चर्यजनक संयोगों को एक क्षण के लिए भी स्वीकार कर सकती है?

यह स्थिति इस बात का ठोस प्रमाण है कि इस विश्व के पीछे एक तत्वदर्शी व शक्ति-संपन्न इरादा है जो इसको अस्तित्व में लाया है और जो ज्ञान व सामर्थ्य और पालन-पोषण व तत्वदर्शिता के समस्त गुणों से आभूषित है। वही है जो अपने ज्ञान एवं तत्वदर्शिता से इसके विविध अंगों में तालमेल और संबंध पैदा करता है और उनको ठीक उद्देश्यों के लिए प्रयोग करता है। साथ ही साथ इस बात की भी गवाही मिल रही है कि आकाश से लेकर धरती तक और धरती तथा आकाश के बीच केवल एक ही सत्ता है जो स्वामी और संचालक है। कोई दूसरा इरादा उसका साझी और सहयोगी नहीं है। अगर धरती व आकाश के अलग-अलग व्यवस्थापक और प्रबन्धक होते या बहुत-से इरादे कार्यरत होते या भलाई व बुराई और प्रकाश व अन्धकार के अलग-अलग ख़ुदा होते तो जगत् के इन विविध खण्डों में यह युग्मता जैसी अनुकूलता और संबंध न होता, जो हम इस जगत् के कोने-कोने में देख रहे हैं। क़ुरआन ने इस तर्क को विभिन्न शैलियों और रीतियों से विभिन्न स्थानों पर वर्णन किया है। हम उदाहरण के रूप में केवल कुछ आयतें पेश करेंगे।

यह तर्क अत्यन्त संक्षेप में क़ुरआन में इस तरह बयान हुआ है —

> "और हमने हर चीज़ के जोड़े बनाए हैं ताकि तुम इससे शिक्षा ग्रहण करो। अतः दौड़ो अल्लाह की ओर, मैं उसकी ओर से तुम्हारे लिए प्रत्यक्ष सावधान करनेवाला हूँ। और न बनाओ अल्लाह के साथ कोई दूसरे उपास्य, मैं तुम्हारे लिए उसकी ओर से खुला हुआ सावधान करनेवाला हूँ।" (क़ुरआन, 51 : 49-51)

यहाँ हर चीज़ के जोड़े-जोड़े होने से आख़िरत और तौहीद दोनों के तर्क दिए गए हैं। तौहीद (एकेश्वरवाद) के बारे में तर्क का विवरण यह है कि इस संसार की

हर चीज़ जोड़े-जोड़े के रूप में पैदा हुई है, और हर चीज़ अपने जोड़े से मिलकर ही अपना उद्देश्य पूरा करती है। यह इस बात का प्रमाण है कि इस जगत् का अस्तित्व व स्थायित्व इसकी पारस्परिक विरोधी वस्तुओं के बीच अनुकूलता और सहयोग पर निर्भर है। और इससे स्पष्टतः यह बात निकलती है कि उनका स्रष्टा व प्रबन्धक एक ही है जो इनमें भिन्नता के बावजूद इनमें अनुकूल सम्बन्ध और मिलाप पैदा करके इनसे अच्छे नतीजे पैदा करता है। अतः यह भिन्नता जिसका इस जगत् में हम अवलोकन करते हैं, केवल वाह्य भिन्नताएँ हैं और कदापि इस बात का प्रमाण नहीं है कि इसके अन्दर विभिन्न इरादे काम कर रहे हैं। इन विविध अंगों की परस्पर अनुकूलता इस बात की अत्यन्त स्पष्ट गवाही है कि केवल एक ही है जिसके संचालन के अंतर्गत इस जगत् के समस्त खण्ड अपने-अपने उद्देश्यों को पूरा कर रहे हैं। इस तर्क का विस्तृत विवरण क़ुरआन में इस तरह आया है :

> "ऐ लोगो! अपने मालिक की बन्दगी करो, जिसने तुमको पैदा किया है और उनको भी जो तुमसे पहले थे, ताकि उसकी यातना से बचो जिसने तुम्हारे लिए धरती को बिछौना बनाया और आकाश को छत, और उतारा आकाश से जल और उससे पैदा किए फल, तुम्हारी आजीविका के लिए। अतः अल्लाह का साझी न ठहराओ, जबकि तुम जानते हो।" (क़ुरआन, 2 : 21-22)

अर्थात् जो इनसान अपनी दोनों आँखों से देख रहा है कि धरती व आकाश इस अनुकूलता एवं संतुलन के साथ उसकी सेवा में कार्यरत हैं, ज़मीन उसके लिए बिस्तर की तरह बिछी हुई है और आसमान तम्बू (शामियाना) बनकर उसपर तना हुआ है, फिर आसमान से पानी बरसता है और ज़मीन उससे अपने फल पैदा करती है और वे फल इनसान के लिए स्वाद और जीवन-रक्षा का माध्यम बनते हैं, वह मनुष्य यह कल्पना कैसे कर सकता है कि आकाश के देवता अलग हैं और धरती के देवता अलग हैं, बारिश कोई लाता है और फल कोई पैदा करता है। इन परस्पर विरोधी और भिन्न तत्वों का यह पारस्परिक सहयोग तो उसी समय सम्भव है जब उन सबको एक ही संचालक और प्रबन्धक-शक्ति, तत्वदर्शिता और दयालुता के साथ, एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए काम में लाए। यही तर्क थोड़ और विस्तार के साथ अन्य स्थान पर बयान हुआ है :

> "और तुम्हारा पूज्य प्रभु एक ही पूज्य है, नहीं है कोई पूज्य प्रभु किन्तु वह करुणामय और दयावान। निश्चय ही आसमानों और ज़मीन की संरचना में, रात और दिन के निरन्तर एक-दूसरे के बाद आने-जाने में, उन नौकाओं में जो लोगों के लाभ की चीज़ें लिए समुद्रों में चलती हैं, वर्षा के उस जल में जो अल्लाह ने आसमान से उतारा और उसके द्वारा ज़मीन को मुर्दा हो जाने के बाद जीवित किया है और उसमें हर

प्रकार के जीवधारियों को फैलाया है, हवाओं के चलने और बादलों में जो आकाश व धरती के बीच वशीभूत बनाकर रखे गए हैं, प्रमाण हैं (एकेश्वरवाद के) समझनेवालों के लिए।" (क़ुरआन, 2 : 163-164)

क़ुरआन में एक अन्य जगह पर इससे अधिक विस्तार के साथ इस ब्रह्माण्ड के सामंजस्य को स्पष्ट किया गया है—

"और अल्लाह ने उतारा आकाश से पानी और उससे जीवित किया धरती को। उसके निर्जीव हो जाने के बाद, निस्सन्देह इसमें एक प्रमाण है उन लोगों के लिए जो सुनें। और तुम्हारे लिए चौपायों के अंदर भी चिंतन करने का स्थान है। हम तुमको पिलाते हैं उन चीज़ों के अन्दर से जो उनके पेटों के भीतर हैं, गोबर और रक्त के बीच से शुद्ध दूध, जो पीनेवालों के लिए अत्यन्त स्वादिष्ट है। और खजूर व अंगूर के फलों से तुम तैयार करते हो मादक वस्तु भी और पाक रोज़ी भी। निस्सन्देह इसके अन्दर एक प्रमाण है उन लोगों के लिए जो समझें। और तेरे पालनहार रब ने मधुमक्खी पर प्रकाशना अवतरित की कि पहाड़ों में और वृक्षों में और टट्टियों पर चढ़ाई गई लताओं में अपने छत्ते बना और हर प्रकार के फल-फूलों का रस चूस और चल अपने पालनहार के निश्चित किए हुए मार्गों पर आज्ञाकारी बनकर। उस मक्खी के भीतर से रंग-बिरंग का एक पेय निकलता है, जिसमें लोगों के लिए आरोग्य है। निस्सन्देह इसमें एक प्रमाण है उन लोगों के लिए जो ध्यान दें।" (क़ुरआन, 6 : 64-69)

इन आयतों में इस संसार के व्यापक सामंजस्य की ओर संकेत है। बादलों से पानी बरसता है, इसे धरती लहलहा उठती है, उसकी वनस्पति को चौपाए चरते हैं, उससे उनके अन्दर दूध बनता है। पेट की गंदगी (अर्थात् गोबर, मूत्र आदि) और ख़ून के अन्दर से सफ़ेद दूध की धारें निकलती हैं और यह दूध, पीनेवालों के लिए अत्यन्त स्वादिष्ट और शक्तिदायक आहार का काम देता है। फिर इसी वर्षा द्वारा पोषित अंगूर और खजूर के फलों से इनसान अपने स्वाद और ज़रूरत की तरह-तरह की चीज़ें पैदा कर लेता है। फिर शहद की मक्खियाँ हैं जो पर्वतों की ऊँचाइयों पर, वृक्षों की शाखाओं पर, अंगूर की टट्टियों में अपने छत्ते बना लेती हैं, फल-फूलों का रस चूस-चूसकर उनको जमा करती हैं, जिनके रंग भी विभिन्न और स्वाद भी विभिन्न, इनसान उनको पीता है, उनसे स्वाद भी लेता है और बीमारियों में आरोग्यता भी प्राप्त करता है। इन दृश्यों को जो व्यक्ति भी शिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से देखेगा वह किस तरह विश्वास कर सकता है कि यह दुनिया और इसके ये सर्वथा आश्चर्यजनक दृश्य एक आकस्मिक घटना के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आ गए हैं, या यह कि ये आकाश एवं पृथ्वी और इनके रंगारंग जलवे विभिन्न देवताओं की कार्यक्षमता के करिश्मे हैं। जिस दुनिया के इतने दूर-दूर के

खण्डों के अन्दर इतने गहरे सम्बन्ध हैं और जो ब्रह्माण्ड अपने विसंगत अंगों की खींचातानी के अंदर अनुकूलता और सामंजस्य के इतने पहलू रखता है वह न तो एक आकस्मिक घटना द्वारा अस्तित्व में आ सकता है, न विभिन्न संकल्पों का संघर्ष-स्थल हो सकता है। मात्र वाह्य चीज़ों को देखनेवाली दृष्टियाँ केवल लहरों के उठने-गिरने को देखती हैं, लहरों के भीतर सीप और सीप के अन्दर पलनेवाले मोती तक उनकी पहुँच नहीं होती, और यही वह हक़ीक़त है जिसकी ओर क़ुरआन मजीद बार-बार ध्यान दिलाता है कि इस विश्व की मात्र परस्पर विपरीत वस्तुओं को न देखो, बल्कि उन सुपरिणामों को देखो जो इन परस्पर विपरीत वस्तुओं के सहयोग से उत्पन्न हो रहे हैं और इस बात की गवाही दे रहे हैं कि एक ही तत्वदर्शी सत्ता का हाथ इस ब्रह्माण्ड की व्यवस्था में लगा हुआ है :

> "और दोनों सागर एक समान नहीं हैं। एक मीठा, आनन्ददायक और प्यास बुझनेवाला है और दूसरा अत्यन्त खारा और कड़ुआ है। और तुम दोनों में से ताज़ा मांस खाते हो, पहनने के लिए ज़ेवर (आभूषण) निकालते हो, और तुम देखते हो कि उसी जल में नौकाएँ उसका सीना चीरती हुई चलती हैं, ताकि तुम अल्लाह का अनुग्रह (रोज़ी) तलाश कर सको और ताकि उसकी कृतज्ञता प्रकट करो। वह दिन के भीतर रात को और रात के भीतर दिन को पिरोता हुआ ले आता है, और उसने आज्ञाधीन कर रखा है सूरज और चाँद को। प्रत्येक एक निश्चित अवधि तक के लिए चलता है। यही अल्लाह तुम्हारा पालनहार (रब) है, उसी के हाथ में शासनाधिकार है।" (क़ुरआन, 35 : 12-13)

खारेपानी के एक समुद्र और मीठे पानी की एक नदी में कितनी स्पष्ट भिन्नता है, फिर भी देखो, ये दोनों किस तरह एक सम्मलित उद्देश्य की प्राप्ति का साधन हैं। किस प्रकार इन दोनों से इनसान अपने लिए भोजन का भण्डार प्राप्त कर लेता है, किस प्रकार इन दोनों से अपनी सजावट व प्रसाधन के लिए मोती प्राप्त कर लेता है। फिर किस तरह ये जलयान चलाने और व्यापार के बड़े आसान साधन उपलब्ध करते हैं। फिर रात के अन्धकार और दिन के प्रकाश पर विचार करो। दोनों अपने गुणों और विशेषताओं में किस प्रकार एक-दूसरे के विपरीत हैं, लेकिन परस्पर विरोधी होते हुए भी पूरे संतुलन एवं सामंजस्य के साथ, एक सेविका की तरह इस विश्व का पालन-पोषण और इसके अन्दर बसनेवाले जानवरों, इनसानों और वनस्पतियों की सेवा में क्रियाशील हैं। सूरज दिन में उगता है और गर्मी व धूप का स्रोत है, चाँद रात में प्रकट होता है और शीतलता व प्रकाश का स्रोत है। देखने में दोनों एक-दूसरे से कितने भिन्न हैं। लेकिन देखते हो कि इस संसार की एक-एक चीज़ उनसे लाभान्वित हो रही है और ये इनसान के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रू

से लाभ पहुँचाने के काम पर नियुक्त हैं। क्या यह सब कुछ संयोग है? क्या यह व्यवस्था, यह नियमबद्धता, यह तारतम्य, यह लाभ पहुँचाने की क्रिया सब कुछ अपने आप हो रही है? इन अवलोकनों के उपरांत जो लोग संसार की आकस्मिक उत्पत्ति पर आग्रह करते हैं, उनका यह आग्रह मात्र न मानने की इच्छा पर निर्भर करती है। ज्ञान और अन्वेषण से इस मानसिकता का कोई सम्बन्ध नहीं।

(ग) प्रतिकूल वस्तु से प्रतिकूल वस्तु का आविर्भाव

इसी तरह एक और पहलू पर विचार कीजिए। इस विश्व में हम देखते हैं कि विपरीत वस्तु से विपरीत वस्तु का आविर्भाव होता है। हरे-भरे वृक्ष से आग की चिंगारियाँ झड़ती हैं :

"और हरे-भरे वृक्ष से तुम्हारे लिए आग बनाई।" (क़ुरआन, 36 : 80)

मृत्यु से जीवन उत्पन्न होता है और जीवन से मृत्यु :

"निकालनेवाला है जीवित को मृत से और मृत को जीवित से, वही अल्लाह है, तो फिर कहाँ भटके जाते हो?" (क़ुरआन, 6 : 95)

स्पष्ट है कि कार्य-कारण के व्यापक नियम से यह चीज़ परे है और उत्पत्ति का वह परिचित नियम जिसपर हमको इतना विश्वास है कि इसके थोड़े से उल्लंघन की भी हम कल्पना नहीं कर सकते, यहाँ आकर बिल्कुल टूट जाता है। क्या यह इस बात का अत्यंत स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि कोई हस्ती इन सारे नियमों से उच्चतर भी है जो इन सबपर अपनी पूर्ण सामर्थ्य से शासन करती रहती है और विपरीत चीज़ से विपरीत चीज़ को अस्तित्व में लाती और उसको अपनी सृष्टि के लिए लाभकारी बनाती है? जो लोग इस विश्व को मात्र कार्य-कारण के अंधे-बहरे नियमों का परिणाम समझते हैं और इसी प्रकाश में इसका विश्लेषण करना चाहते हैं, वे मृत्यु से जीवन और जीवन से मृत्यु के पैदा होने का क्या कारण बताएँगे? और हरे-भरे वृक्ष से तरोताज़ा फूलों के स्थान पर आग की चिंगारियाँ झड़ने का क्या कारण बताएँगे? क्या कार्य-कारण का व्यापक नियम यही चाहता है कि विपरीत चीज़ से विपरीत चीज़ पैदा हो? अगर ऐसा नहीं है तो निश्चय ही एक ऐसी हस्ती को मानना पड़ेगा है जो इन समस्त भौतिक नियमों का स्वामी एवं संचालक है।

(घ) एकत्व से वैविध्य की उत्पत्ति

इसी से मिलता-जुलता एक और तथ्य भी है। हम इस ब्रह्माण्ड में देखते हैं कि एकत्व से वैविध्य की उत्पत्ति होती है। विज्ञान का यह दावा है कि यह ब्रह्माण्ड अपने आरम्भ में अयौगिक होता है, फिर क्रमश: इसके अंशों में विविधता उत्पन्न होती है और वह बढ़ती जाती है। यह अगर सत्य है, और इसकी सत्यता को नकारने का कोई कारण नहीं है, तो इससे यह अनिवार्यत: सिद्ध होता है कि कोई है जो परिवर्तन और विभाजित करने का काम कर रहा है, जो एक को दो और दो को चार करता है, और यहीं से यह बात भी निकलती है कि वस्तुओं और प्रकृति की यह अनेकता इस बात का प्रमाण नहीं है कि ईश्वर भी अनेक हैं। धरती एक ही है, पानी एक ही है, हवाएँ भी एक ही तरह की चलती हैं, फिर भी वनस्पतियाँ असंख्य प्रकार की उगती हैं, फूलों के रंग तरह-तरह के होते हैं, फलों के आकार-प्रकार, उनका परिमाण, उनके रंग व गन्ध, हर चीज़ में अन्तर पाया जाता है। एक ही गुठली से कभी एक से अधिक अंकुर निकलते हैं और उनसे अनेक तने और शाखाएँ पैदा हो जाती हैं, और कभी एक ही अंकुर निकलता है और एक ही तना पैदा होता है —

> "और धरती में पास-पास के भू-खण्ड हैं और अंगूर के बाग़ हैं और खेतियाँ हैं और खजूर हैं, इकहरे और दोहरे, एक ही पानी से सिंचित होते हैं, फिर भी फल में हम एक को दूसरे से बढ़ा देते हैं, निस्सन्देह इसमें निशानियाँ हैं समझनेवालों के लिए।" (कुरआन, 13 : 4)

अर्थात् जिस व्यक्ति में बुद्धि होगी निश्चय ही इससे उसको चेतावनी मिलेगी। वह हर चीज़ के रंग और उसके फलों और फूलों की विविधता पर विचार करेगा तो इस नतीजे पर पहुँचेगा कि कोई स्रष्टा है जो पूर्ण तत्वदर्शिता, सामर्थ्य और असीम कृपा से युक्त होकर अपनी सत्ता चला रहा है और साथ ही यह हक़ीक़त भी उसपर स्पष्ट होगी कि वह अकेला है और उसका कोई साझीदार नहीं। क्योंकि जब एक ही पानी से सिंचित होनेवाले पौधे और एक ही भूखण्ड के वृक्षों में ये सब विविधता हम देखते हैं और इसको पानी व धरती की भिन्नता का परिणाम नहीं मानते तो इस ब्रह्माण्ड में पाई जाने वाली इस रंगारंगी को इसका प्रमाण कैसे समझा जा सकता है कि ईश्वर भी कोई है? तथा यह बात भी उसपर स्पष्ट होगी कि ये समस्त वैविध्य उत्पत्ति के किसी अन्धे-बहरे नियम के चमत्कार नहीं हैं, बल्कि कोई सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान सत्ता है जो हर चीज़ को अपने हिसाब से अस्तित्व में लाती है और अपनी तत्वदर्शिता के अनुसार उसमें न्यूनाधिक परिवर्तन करती रहती है।

(ङ.) प्रतिभाषित जगत् का वशीभूत होना

तौहीद (एकेश्वरवाद) का एक बहुत बड़ा प्रमाण वह लाचारी और बेबसी, अधीनता और आज्ञाकारिता भी है, जिसके लक्षण हम इस विश्व की समस्त बड़ी और शानदार कृतियों में पाते हैं। यह इस बात का अत्यंत प्रबल प्रमाण है कि इनमें से कोई भी चीज़ ईश्वरत्व के पद पर आसीन नहीं हो सकती। ईश्वरीय गुणों के साथ कोई ऐसी सत्ता विभूषित है जो इन सबसे महान और उच्च है। सूरज, चाँद, तारे अपने सौन्दर्य और बड़ाई के बावजूद और धरती, नदियाँ, पर्वत, हवा, बादल, बिजली और कड़क अपनी विशालता, शक्ति और महत्ता के बावजूद एक दृढ़ तत्वदर्शितायुक्त व्यवस्था के अधीन सर्वथा वशीभूत हैं। अतः अवश्य ही इनके अतिरिक्त कोई और है जो इन सबका स्रष्टा और सबका शासक है। अब विचार कीजिए कि वह कौन है जो इन सबको पैदा करनेवाला और इन सबको आदेश देनेवाला और इन सबका संचालक है। इस प्रश्न को क़ुरआन ने बार-बार उठाया है और इसका उत्तर मुशरिक (बहुदेववादी) अरबों के मुख से भी यही निकला, जिसको क़ुरआन ने उद्धृत किया है कि इस संसार का स्रष्टा एक अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न और बुद्धिमान सत्ता है :

> "अगर तुम इनसे पूछोगे कि आकाश और धरती को किसने बनाया तो वे उत्तर देंगे कि इनको परम शक्तिमान और सर्वज्ञ ने बनाया है।" (क़ुरआन, 43 : 9)

क्योंकि जो व्यक्ति इस विश्व की चीज़ों पर ग़ौर करेगा, वह इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि इनमें से किसी से इस विश्व के सृजन का सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता है। इस विश्व का स्त्रष्टा कोई ऐसी ही हस्ती हो सकती है जो शक्ति व बड़ाई और ज्ञान व तत्वदर्शिता के समस्त गुणों से आभूषित हो।

यहाँ इस बात को ख़ास तौर पर ध्यान में रखना चाहिए कि इन वस्तुओं में से जो जितनी ही अधिक शानदार है, उनके माथे पर अधीनता एवं आज्ञापालन का चिह्न उतना ही अधिक उभरा हुआ नज़र आता है। दुनिया ने सूरज और चाँद की सबसे अधिक पूजा की है। जबकि विवशता व अनुपालन, पराधीनता व पतनशीलता और ग्रहण से प्रभावित होने के चिह्न जो हम उनमें देखते हैं, दूसरी किसी चीज़ में भी नहीं देखते। लेकिन यह इनसान की विचित्र मूर्खता है कि इन लक्षणों को देखने-समझने के बाद भी न केवल यह कि उसने उनको उपास्य बनाकर उनकी पूजा की, बल्कि उसने उनकी दुर्बलता और पराधीनता के उन लक्षणों की गणना भी उनके ईश्वर होने के प्रमाणों में कर लिया।

तौहीद (एकेश्वरवाद) के ये प्रमाण, संक्षेप और विस्तार के विभिन्न रूपों में,

क़ुरआन मजीद में बयान हुए हैं। हम केवल इबराहीम (अलै०) के उस तर्क को यहाँ उद्धृत करते हैं जो उन्होंने अपनी जातिवालों के सामने पेश किया और जो इबराहमी तर्क-सौन्दर्य की सर्वोत्तम झाँकी है —

> "जब रात उस पर छा गई, उसने एक तारा देखा। कहा, यह मेरा रब है, किन्तु जब वह डूब गया तो बोला, मैं डूब जानेवालों का अनुरागी नहीं हूँ। फिर जब चाँद को चमकता देखा तो कहा, यह है मेरा रब, किन्तु जब वह भी डूब गया तो बोला, अगर मेरे पालनहार ने मेरा मार्गदर्शन न किया होता तो अवश्य ही मैं भी पथभ्रष्ट लोगों में शामिल हो जाता। फिर जब सूरज को चमकता देखा तो कहा, यह है मेरा रब, यह सबसे बड़ा है। मगर जब वह भी अस्त हो गया तो कहा, ऐ मेरी जातिवालो! मैं उन सबसे विरक्त हूँ, जिन्हें तुम ख़ुदा का साझीदार ठहराते हो, मैंने तो एकाग्र होकर अपना मुख उस सत्ता की ओर कर लिया है, जिसने धरती और आकाशों की रचना की है और मैं कदापि मुशरिकों में से नहीं हूँ।" (क़ुरआन, 6 : 76-79)

(च) जगत् की सुदृढ़ व्यवस्था

इसी तरह ख़ुदा के अस्तित्व और उसके एक होने की एक बहुत बड़ी गवाही वह दृढ़ और सर्वव्यापी प्रबन्ध और व्यवस्था है जिसका इस जगत् के हर कोने में हम अवलोकन करते हैं। जगत् की विभिन्न वस्तुओं के इस संघर्ष में न केवल यह कि समस्त छोटी-बड़ी सृष्ट-वस्तुएँ स्थित और शेष रहती हैं, बल्कि अपनी योग्यता एवं सामर्थ्य के अनुसार फल-फूल रही हैं। एक ओर यह स्थिति है कि, ऐसा लगता है कि इस विश्व की प्रत्येक वस्तु अपनी इच्छा से बेरोक-टोक अपनी दिशा पर बढ़ती चली जा रही है, न वह किसी अटल व्यवस्था की पाबन्द मालूम होती है, न किसी उच्च शक्ति के अधीन और आज्ञाकारी, लेकिन फिर अचानक हम देखते हैं कि कोई गुप्त हाथ उसकी बागडोर मोड़कर उसको एक दिशा से दूसरी दिशा पर लगा देता है। कितनी ही बार हम देख चुके हैं कि कुछ बड़े-बड़े आकाशीय पिण्ड किसी ख़ास दिशा में बढ़ चले, और अगर वे उसी दिशा में बढ़ते चले जाते तो निश्चित था कि हमारी पृथ्वी का पिण्ड चकना-चूर होकर रह जाता। अतः इस तरह के निरीक्षणों के आधार पर कभी-कभी कुशल खगोलशास्त्रियों ने यह घोषणा भी कर दी कि इतनी अवधि में यह पृथ्वी अमुक आकाशीय पिण्ड से टकरा जाएगी। लेकिन जब वह निश्चित समय आया तो अचानक उस पिण्ड ने अपनी दिशा इस तरह बदल दी मानो किसी सवार ने अपनी सवारी की बागडोर मोड़ दी और वह बड़ा ख़तरा जो हमारी इस दुनिया के बिल्कुल सिर पर आ गया था अचानक दूर हो गया—

थी ख़बर गर्म कि ग़ालिब के उड़ेंगे पुर्ज़े ।
देखने हम भी गए थे, पे तमाशा न हुआ ॥

विचार कीजिए, यह सवार कौन है ? कौन है जो शक्तियों और पदार्थों तथा पिण्डों की बागें थामे हुए है ? जिस हद तक चाहता है उनको ढील देता है, फिर जहाँ चाहता है रोक लेता है, फिर उसके बाद वे एक इंच भी बढ़ने का दुस्साहस नहीं कर सकते । क्या यह केवल एक संयोग है ? क्या यह अन्धी-बहरी शक्तियों की अपनी इच्छा और सूझ-बूझ से सब कुछ हो रहा है ? क्या मानव-बुद्धि और मानव-हृदय को इन उत्तरों से संतुष्टि और तृप्ति हो सकती है ? क़ुरआन इसका यह उत्तर देता है —

> "अल्लाह आकाशों और पृथ्वी को थामे हुए है कि अपनी जगह से टल न जाएँ, और वे अगर टल जाएँ तो कोई उसके बाद उनका थामनेवाला नहीं है । निस्सन्देह वह अत्यन्त सहनशील और क्षमा करनेवाला है ।" (क़ुरआन, 35 : 41)

कौन है जो क़ुरआन के इस उत्तर की सत्यता से इनकार कर सकता है ?

यह है वह प्रबन्ध और व्यवस्था जो इस भौतिक जगत् की शक्तियों और पदार्थों के बीच हम देखते हैं । इससे आगे बढ़कर अगर हम इस जगत् की नैतिक शक्तियों के संघर्ष और उनकी परिस्थितियों एवं परिणामों पर विचार करें तो वहाँ भी यही नियम कार्यरत नज़र आता है । एक ग़लत विचारधारा जन्म लेती है, इस विचारधारा के ध्वजावाहक पैदा होते हैं, इसपर एक ग़लत नैतिक व्यवस्था, एक ग़लत अर्थव्यवस्था और एक ग़लत राजनीतिक व्यवस्था की परतें चढ़ती जाती हैं, यहाँ तक कि यह आशंका उत्पन्न हो जाती है कि इसके प्रभुत्व के नीचे दबकर सदाचरण के समस्त तत्व दम तोड़ देंगे । फिर भी इस ग़लत व्यवस्था को मुहलत मिलती रहती है । यहाँ तक कि सम्पूर्ण जल-थल में बिगाड़ की कालिमा छा जाती है और इस जगत् के सुधारक इस संसार का फिर से आमूल सुधार करने से निराश होने लगते हैं । फिर अचानक एक समय आता है, जब कोई अदृश्य हाथ प्रकट होकर इस पूरी ग़लत व्यवस्था को इस तरह झँझोड़ देता है कि उसकी एक-एक ईंट बिखर जाती है —

> "यहाँ तक कि जब नबी क़ौम के ईमान की तरफ़ से निराश हो जाते हैं और क़ौम के लोग इस कुधारणा में पड़ जाते हैं कि उनको अज़ाब (यातना) की झूठी धमकी दी गई थी, तभी हमारी मदद नबियों को पहुँच जाती है ।" (क़ुरआन, 12 : 110)

दूसरी जगह फ़रमाया है —

> "और हिला मारे जाते हैं, यहाँ तक कि पुकार उठते हैं नबी और वे लोग जो उनके साथ ईमान लाते हैं कि अल्लाह की मदद कब आएगी । जान लो ! अल्लाह की

मदद क़रीब ही है।" (क़ुरआन, 2 : 214)

इन निरीक्षणों के बाद कौन है जो एक क्षण के लिए भी यह विश्वास कर सके कि यह दुनिया अपने आप अस्तित्व में आ गई और स्वयं ही क़ायम है, या उसे यह भ्रम हो कि यह विभिन्न शक्तियों और पदार्थों का एक संघर्ष-स्थल है। और ये शक्तियाँ और पदार्थ किसी उच्च शक्ति के अधीन नहीं हैं? या यह कल्पना कर सके कि उस सर्वोच्च शक्ति की सत्ता विभाजित है? या यह सोच सके कि इस दुनिया को इसके पैदा करनेवाले ने पैदा करके अन्धे भैंसे की तरह छोड़ दिया है और इसके ऊपर कोई उच्च नैतिक नियम कार्यरत नहीं है?

(छ) अभाज्य प्रभुसत्ता

इस संसार का केवल स्थायित्व ही इस बात का प्रमाण है कि इसका शासक एक है, जिसकी प्रभु-सत्ता अविभाज्य है। हम अपने सामाजिक जीवन में किसी राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना उस समय तक नहीं कर सकते जब तक प्रभुसत्ता को किसी एक ख़ास केन्द्र पर केन्द्रित न कर दें। प्रभुसत्ता के विभाजन के साथ किसी स्थायी सामूहिक दृढ़ व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती। समस्त राजनीतिक संगठनों में लोकतन्त्र वह व्यवस्था है जिसने सत्ता को एक बड़े क्षेत्र में फैलाने की कोशिश की है, तथापि उसमें भी एक ऐसा बिन्दु अनिवार्यतः स्वीकार करना पड़ता है जहाँ उसकी फ़ैली हुई प्रभुसत्ता सिमटती और एकत्रित होती है। अगर ऐसा न हो तो इसका अराजकता और अव्यवस्था के तूफ़ान में बिखर जाना निश्चित है। अतः यह बात निश्चित है कि प्रभुसत्ता के विभाजन के साथ किसी सामूहिक व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती।

अब विचार कीजिए कि यह संसार इतने असंख्य विविध खण्डों पर आधारित होने के बावजूद न केवल क़ायम है, बल्कि पूरी शक्ति व दृढता के साथ क़ायम है। इसमें विभिन्न शक्तियों का टकराव भी है, विपरीत प्रकृति की वस्तुओं का संघर्ष भी है, भलाई व बुराई के टकराव भी हैं, लेकिन इस संसार की नौका है कि इन लहरों के तूफ़ानों में से बचती, संभलती और कतराती हुई चली जा रही है, और इतने उत्तम ढंग से कि मानव-बुद्धि चकित रह जाती है। इस परिस्थिति का अवलोकन हम में से हर वह व्यक्ति कर रहा है जो इस बादशाही की व्यवस्था पर विचार करता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि कौन-सी बात बुद्धिसंगत है? क्या बहुदेववादियों का यह अक़ीदा (अवधारणा) कि धरती व आकाश के ख़ुदा अलग-अलग हैं, या

यह हक़ीक़त कि एक ही सत्ता है जो आसमानों का भी ख़ुदा है और धरती का भी? क्या इस जगत् से इस बात का साक्ष्य मिल रहा है कि प्रकाश व अन्धकार के अलग-अलग पूज्य-प्रभु हैं या इस बात का कि प्रकाश और अन्धकार दोनों का जन्मदाता एक ही है? क्या यह बात सही जान पड़ती है कि यह दुनिया असंख्य देवताओं का संघर्ष स्थल है, या यह नज़र आता है कि इस सम्पूर्ण व्यवस्था का व्यवस्थापक व प्रबन्धक केवल एक ईश्वर है, जो सबको नियंत्रित किए हुए है? अगर पहली बात सही है तो यह संगठन बिखर क्यों नहीं जाता? ईश्वरीय सत्ता के विरुद्ध बग़ावत क्यों नहीं फूट पड़ती? सत्ता के ऐसे विघटन और बिखरावों के साथ यह एकरूपता कैसे स्थित है? यही हक़ीक़त है जो क़ुरआन मजीद ने अरबवासियों के सामने और उन समस्त बहुदेववादी जातियों के सामने पेश की है जो इस विश्व में किसी न किसी प्रकार के सत्ता विभाजन को स्वीकार करती हैं—

"क्या इन्होंने ज़मीन के अलग पूज्य-प्रभु ठहरा लिए हैं जो सृजन करते हैं। यदि आकाश और धरती में अल्लाह के सिवा और भी इष्ट-पूज्य होते तो इनकी (आकाश व धरती की) व्यवस्था बिगड़ जाती। अतः पाक है अल्लाह, सिंहासन (अर्श) का स्वामी, उन बातों से जो ये लोग (बहुदेववादी) बयान करते हैं।"

(क़ुरआन, 21 : 21-22)

दूसरे स्थान पर फ़रमाया है —

"कह दो अगर उसके साथ और भी ख़ुदा होते, जैसा कि ये (बहुदेववादी) कहते हैं, तो अर्शवाले के स्थान को पहुँचने की अवश्य कोशिश करते। पवित्र है वह और बहुत उच्च है उन चीजों से जो ये कहते हैं।" (क़ुरआन, 17 : 42-43)

(ज) सत्य एवं असत्य का संघर्ष और सत्य की विजय

कुछ जातियों को ख़ुदा के एक होने, बल्कि ख़ुदा के सम्बन्ध में बहुत बड़ा भ्रम दुनिया में बुराई और असत्य के अस्तित्व से पैदा हुआ है। उनकी नज़र असत्य के झाग पर जम गई और इस झाग के नीचे जो सत्य का मक्खन था वह उनको नज़र न आ सका। परिणाम यह हुआ कि वे या तो सिरे से किसी सामर्थ्यवान व दयावान और पवित्रतम ख़ुदा के अस्तित्व ही से इनकार कर बैठीं, या माना भी तो यह माना कि यह दुनिया बहुत-से रक्तपायी देवताओं की लीला है। वे इसको पैदा करके दूर बैठे हुए इसकी मुसीबतों, कठिनाइयों, दुःखों और आफ़तों का तमाशा देख रहे हैं। या फिर उन जन जातियों ने यह किया कि भलाई व बुराई और प्रकाश व अन्धकार के अलग-अलग ख़ुदा निश्चित कर लिए और

दुनिया को इन प्रतिकूल शक्तियों का एक रणक्षेत्र बना दिया। यह भ्रम उन जातियों को केवल सोच-विचार और, धैर्य की कमी और भौतिकवादी दृष्टि के कारण हुआ। न उन्होंने इस दुनिया के वास्तविक स्वभाव व बनावट को पहचाना और न सत्य-असत्य के बीच संघर्ष में सत्य की विजय का अवलोकन किया। क़ुरआन ने इन भ्रमों का बहुत विस्तार से खण्डन किया है। हम इसके साथ कुछ हक़ीक़तों की ओर संकेत करना चाहते हैं। क़ुरआन ने इस दुनिया के वास्तविक स्वभाव की ओर इन शब्दों में संकेत किया है —

> "अल्लाह ने आकाश से पानी उतारा। अतः वादियाँ (अर्थात् नदी, नाले) अपनी धारिता के अनुसार बह निकलीं, फिर जलधारा के ऊपर झाग उभर आया और इसी तरह का झाग उस चांदी में होता है, जिसको आग में पिघलाते हैं ज़ेवर बनाने के लिए या कोई अन्य सामान। इसी तरह अल्लाह सत्य और असत्य की मिसाल बयान करता है, फिर जो झाग है वह तो सूखकर नष्ट हो जाता है, शेष जो लोगों के लिए लाभदायक है वह भूमि में ठहर जाता है। इसी प्रकार अल्लाह मिसालों से अपनी बात समझाता है।" (क़ुरआन, 13 : 17)

अर्थात् इस दुनिया का वास्तविक स्वभाव यह है कि जिस प्रकार एक सुरुचि एवं अच्छी प्रकृति का इनसान मक्खी को पचा नहीं सकता, इसी तरह दुनिया असत्य को हज़म नहीं कर सकती। यह हर ओर से असत्य को छाँटती रहती है और सत्य एवं लाभदायक को स्वीकार करती है। वर्षा होती है और वादियाँ बह निकलती हैं तो हम देखते हैं कि पानी की सतह पर झाग उभर आते हैं, फिर पानी धरती में टिक जाता है और झाग सूखकर हवा में उड़ जाता है। इसी तरह हम चाँदी को ज़ेवर बनाने के लिए कुठाली में पिघलाते हैं, उसका मैल अलग हो जाता है और शुद्ध चाँदी बची रहती है। यही इस दुनिया का वास्तविक स्वभाव है। इसमें निरा असत्य का अस्तित्व नहीं है। असत्य जब भी पाया जाता है सत्य के साथ सम्मिश्रित होकर पाया जाता है और ठीक उसी तरह, जिस तरह अच्छे वृक्षों और अच्छे पशुओं के साथ परजीवी पौधे और परजीवी कीड़े चिमट जाते हैं। इसी तरह सत्य के साथ असत्य चिमट जाता है। मगर मनुष्य संकुचित दृष्टि के कारण इन परजीवी कीड़ों और परजीवी पौधों को ही असल समझने लगता है और फिर प्रकृति की ज़्यादतियों और अयोग्यताओं पर आक्षेप करता है, जबकि यह आक्षेप केवल मनुष्य की बकवास और मूर्खता का नतीजा होता है। प्रकृति प्रत्येक क्षेत्र में अत्यन्त कुशल और सत्यप्रिय है। अगर किसी निर्मित वस्तु से निर्माता के स्वभाव व पसंद का अनुमान लगाया जा सकता है तो इस

संसार के स्वभाव को देखकर अत्यन्त सरलता से हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि इस विश्व का स्रष्टा सत्य है, सत्य को पसन्द करता है और अपने वचनों से सत्य को स्थापित करता और उसे स्थायित्व प्रदान करता है। यही हक़ीक़त है जो इस प्रकार बयान हुई है —

> "और हमने आसमान और ज़मीन को और जो कुछ उनके बीच है खेल करने के लिए नहीं बनाया। अगर हम खेल बनाना चाहते तो अपने पास ही से बनाते—अगर हम यह करनेवाले ही होते। बल्कि हम सत्य को असत्य पर मारते हैं, तो वह उसका भेजा निकाल लेता है और असत्य देखते-देखते विलुप्त हो जाता है। और तुम्हारे लिए विनाश है उन बातों के कारण जो तुम बयान करते हो।"
>
> (क़ुरआन, 21 : 16-18)

इस दुनिया में जो कष्ट और कठिनाइयाँ हैं वे भी इस बात का प्रमाण नहीं हैं कि यह दुनिया विभिन्न स्वभाववाले देवताओं की रणभूमि है। क़ुरआन ने समस्त सुखों और दुखों को एक ही तत्वदर्शी और सामर्थ्यवान ख़ुदा की इच्छा और तत्वदर्शिता के अधीन और उनको क़ौमों की नीति एवं कर्मों का परिणाम ठहराया है और अत्यन्त विस्तार के साथ समझाया है कि कभी-कभी ये विपदाएँ इसलिए आती हैं कि जो घमण्डी अपनी उद्दण्डता में हद से आगे बढ़ गए हैं, वे अपने कर्मों के प्रति सचेत हों और अपनी निर्बलता और विवशता को महसूस करके ख़ुदा की तरफ़ लौटें। कभी-कभी उन विपदाओं का प्रादुर्भाव इसलिए होता है कि कोई उद्दण्ड जाति, जिसपर अल्लाह तआला की ओर से सावधान करने का कार्य पूरा हो चुका हो, उन विपदाओं के द्वारा वह नष्ट कर दी जाए। कुछ स्थितियों में हक़ पर चलनेवाले भी इनमें से कुछ हिस्सा पाते हैं, ताकि उनके ईमान और आस्था और धैर्य व दृढ़ता की परीक्षा हो, कमज़ोरियाँ दूर हों और अच्छाइयाँ और योग्यताएँ क्रियाशील हों। इन समस्त बातों को पवित्र क़ुरआन ने विभिन्न शैलियों में बहुत ही स्पष्ट रूप में बयान किया है, जिससे यह हक़ीक़त हमारे सामने आती है कि जिस तरह रात-दिन और सर्दी-गर्मी दोनों इस संसार के भौतिक अस्तित्व के लिए समान रूप से ज़रूरी हैं। इसी तरह नेमतों और ख़ुशहालियों के साथ-साथ विपदाएँ और संकट भी इस संसार के नैतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के लिए अपरिहार्य हैं। यह कदापि इस बात का प्रमाण नहीं है कि इस संसार में बनाव और बिगाड़, दया और अनुग्रह के अलग-अलग देवता हैं, बल्कि केवल एक ही है जो दाता भी है और वही दण्ड देनेवाला भी; और उसका यह दण्ड भी वास्तव में उसके पुरस्कार ही का एक पहलू है जैसा कि क़ुरआन में इस बात को स्पष्ट किया गया है।

यही हाल अपराधों और पापों का है। यह भी ख़ुदा की इच्छा के अधीन है, और अल्लाह तआला की बहुत बड़ी नेमत, जो इनसान को मिली है, अर्थात् कर्म की स्वतन्त्रता, यह उसकी प्रतिच्छाया में से है। अल्लाह तआला ने इनसान को भलाई व बुराई की पहचान देकर उसकी परीक्षा ली है। इस परीक्षा को अपेक्षित है कि इनसान को सुकर्म और अपकर्म की स्वतन्त्रता प्रदान की जाए। इस स्वतन्त्रता के कारण इनसान नेकी और बुराई दोनों का मार्ग अपना सकता है। पहला मार्ग उसकी प्रकृति का मार्ग है, और उसपर उसका चलना अल्लाह तआला को पसन्द है। दूसरा मार्ग प्रकृति और ख़ुदा दोनों से विद्रोह करना है और उसपर चलना ख़ुदा को अत्यन्त नापसन्द है। लेकिन वह उस मार्ग पर चलने की भी छूट देता है, क्योंकि इस छूट के बिना स्वतन्त्रता का कोई अर्थ ही शेष नहीं रहता। इनसान की यह स्वतन्त्रता ख़ुदा की बख़्शिश और उसकी इच्छा के अधीन है और यह अनिवार्य नहीं कि जो कुछ ख़ुदा की इच्छा के अधीन हो वह उसको पसन्द भी हो। वह प्रमाण-पुष्टि और बात पूरी करने के लिए उन कामों के लिए भी लोगों को ढील देता है जो स्पष्टतः उससे विद्रोह के अन्तर्गत आते हैं। अतः भलाई हो या बुराई सब अल्लाह ही की ओर से हैं, कोई चीज़ भी उसकी इच्छा और अधिकार-परिधि से बाहर नहीं हैं, न यह दावा सही है, कि इनसान को कोई भी कर्म करने के लिए ख़ुदा ने मजबूर किया है और न यह दावा ही सही है कि इनसान कुछ भी करने के लिए बिल्कुल स्वतन्त्र है। सत्य इन दोनों के मध्य है। इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण आगे आएगा।

ऊपर के विवरण से यह बात सिद्ध होती है कि अवश्य ही इस जगत का स्रष्टा परम सत्य है और सत्य को पसन्द करता है तथा यहीं से यह बात स्वतः निकलती है कि नेकी व बदी, प्रकाश व अन्धकार, सुख व दुख, अच्छाई और बुराई और बनाव व बिगाड़ के अलग-अलग देवता नहीं हैं, एक ही है जिसके संचालन के अन्तर्गत यह पूरा कारख़ाना चल रहा है।

(झ) संकेत

इसी प्रकार एकेश्वरवाद (तौहीद) के अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण उन सूक्ष्म संकेतों में मिलते हैं जो इस जगत् के विभिन्न दृश्यों में समाहित हैं और ये केवल उनको नज़र आते हैं जो सूक्ष्मदृष्टि और शिक्षा ग्रहण करनेवाला दिल रखते हैं। यह क़ुरआन के विशेष प्रकार के तर्क हैं जो तर्क वाक्पटुता की पकड़ से पूर्णतः परे हैं और इससे वे जातियाँ बहुत कम लाभान्वित हो सकती हैं जो तर्क के कृत्रिम तरीक़ों की अभ्यस्त होकर निष्कर्ष पर पहुँचने तथा सावधानीपूर्वक विश्वास ग्रहण करने की नैसर्गिक क्षमता खो बैठी हों, जो अल्लाह तआला ने प्रत्येक स्वस्थ और

सरल प्रकृतिवाले इनसान में निहित कर रखा है। यह क्षमता केवल उन लोगों में सुरक्षित रहती है जो सीधी-सादी प्रकृति पर क़ायम रहते हैं और इस दृष्टि से समस्त जातियों में अरबवालों को उस वक़्त जो उच्च स्थान प्राप्त था वह विदित है। यही कारण है कि ये लोग अत्यन्त संवेदनशील थे और इशारों में वह सब कुछ पढ़ लेते थे, जो दूसरे मोटी-मोटी किताबों में भी पढ़कर समझ नहीं सकते थे। जो लोग अरब के इस्लाम से पूर्व अर्थात् अज्ञान काल के वक्ताओं और कवियों की वाणी (कविताओं) पर नज़र रखते हैं वे उनकी इस सुरुचि से भली-भाँति परिचित हैं। वे यार की मंज़िल के मिटे हुए एक-एक चिह्न को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं, उससे इतने प्रभावित होते हैं और फिर उसकी शिक्षाओं और उसके सूक्ष्म संकेतों और संदेशों का ऐसा प्रभावपूर्ण रूप से चित्रित करते हैं कि सुननेवाले का दिल भर आता है। क़ुरआन से पहले उनकी यह दृष्टि, जिसके लिए अरबी साहित्य में सही शब्द "तवस्सुम" है। केवल प्रिय के निवास-स्थल के चिह्नों और लक्षणों के वर्णन तक सीमित था और अनिवार्यतः उसके प्रभाव भी मामूली और निम्नकोटि के थे। क़ुरआन ने उनकी इस रुचि को बढ़ाया और जगत् के लक्षणों एवं चमत्कारों और उसके संकेतों के विस्तार की ओर ध्यान आकर्षित किया, जिसका नतीजा यह हुआ कि जो जाति ज़्यादा से ज़्यादा इमरौलक़ैस और ज़ुहैर जैसे महान् कवियों की श्रेणी के व्यक्ति पैदा कर सकती थी— उसके अन्दर अबू बक्र सिद्दीक़ और उमर फ़ारूक़ (रज़ि) जैसी महान हस्तियाँ पैदा हुईं।

यह संकेत क़ुरआन की समस्त आधारभूत मान्यताओं अर्थात् एकेश्वरवाद (तौहीद), ईशदूतत्व (पैग़म्बरी) और आख़िरत के बारे में स्पष्ट किए गए हैं। यहाँ सब के वर्णन का अवसर नहीं है। हम केवल तौहीद से सम्बंधित एक संकेत को स्पष्ट करेंगे, ताकि यह दूसरे संकेतों पर विचार करने के लिए नमूना बन सके।[1]

---

1. इस जगत् में सत्य के जो संकेत पाए जाते हैं उनकी कोई सीमा नहीं है। जिस तरह हम ईसाइयों को देखते हैं कि वे अपने गिरजों की प्रत्येक चीज़ में अपने मौलिक अक़ीदों का प्रदर्शन करते हैं, जैसे यदि उन्हें त्रिवाद (तीन ख़ुदाओं की मान्यता) को प्रदर्शित करना है, तो वे भवन का निर्माण उस आकार में करेंगे जिससे भवन के एक-एक कोने से त्रिवाद परिलक्षित होगा, यहाँ तक कि फ़र्नीचर की तरह की भी जो चीज़ें होंगी, सब त्रिकोणीय होंगी, मेज़, क़लमदान, क़लम और पेपरवेट तक से त्रिवाद का प्रदर्शन हो रहा होगा। इसी प्रकार अल्लाह तआला ने इस विश्व की हर चीज़ में तौहीद और आख़िरत की हक़ीक़तों को प्रदर्शित किया है। जिस चीज़ को भी इनसान सोच-विचार की दृष्टि से देखे तो उसको तौहीद और आख़िरत का कोई न कोई प्रमाण हाथ आ जाएगा। इसी को कुछ

फ़रमाया गया —

"और अल्लाह ही को धरती व आकाश की प्रत्येक वस्तु चाहे-अनचाहे सजदा कर रही है और सब वस्तुओं की परछाइयाँ भी प्रातः और सन्ध्या समय उसके आगे झुकती हैं। पूछो, कौन है आसमानों और ज़मीन का रब? कहो, अल्लाह।"

(क़ुरआन, 13 : 15-16)

'चाहे-अनचाहे' का अर्थ यह है कि जो अपनी आन्तरिक प्रेरणा से ख़ुदा को सजदा करते हैं वे तो करते ही हैं, लेकिन जो अपनी इस आन्तरिक प्रेरणा से ख़ुदा के आगे नहीं झुकते उन्हें विवश होकर झुकना पड़ता है और इसके बाद इस विवशतापूर्ण सजदे की व्याख्या कर दी कि उनकी परछाइयाँ सुबह-शाम ख़ुदा को सजदा करती हैं, और यह एक ऐसी हक़ीक़त है जिसका प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व के अन्दर अवलोकन कर रहा है।

इसे और अधिक विस्तार से इस तरह समझा जा सकता है कि हर चीज़ की परछाई सूरज के ढलने के साथ सूरज के बिल्कुल उसकी विरुद्ध दिशा में ज़मीन पर इस तरह झुकना शुरू होती है जिस तरह एक रुकूअ करनेवाला ख़ुदा के आगे झुकता है और सूर्यास्त के साथ-साथ यह परछाई इस तरह ज़मीन पर बिछ जाती है जिस तरह एक दण्डवत (सजदा) करनेवाला अपने पूज्य के आगे बिछ जाता है, या एक साजिद (सजदा करनेवाला) ख़ुदा के सामने सजदा करता है। फिर रात भर इबादत करनेवाले बन्दे की तरह रात भर इसी हालत में पड़ी रहती है। फिर जब प्रातः बेला होती है तो यह परछाई क्रमशः सूरज की बिल्कुल विरुद्ध दिशा से उठना शुरू होती है और धीरे-धीरे पूरे क़ियाम (नमाज़ में खड़े होने) की हालत में आ जाती है, जिस तरह एक नमाज़ी सजदे से क़ियाम की हालत में आ गया होता है और फिर सूरज के ढलने के साथ ही रुकूअ और सजदे की पुनरावृत्ति होती है, जैसाकि ऊपर वर्णन हुआ है।

यह स्थिति दो अत्यन्त महत्वपूर्ण हक़ीक़तों की गवाही दे रही है। एक यह कि इस संसार की प्रत्येक वस्तु चौबीस घंटे रुकूअ व सजदे में है। दूसरी यह कि यह सजदा सूर्य-उपासना के बिल्कुल विपरीत है। सूरज जब पूर्व में उदय होता है, तो हर वस्तु का सजदा पश्चिम की ओर होता है और जब पश्चिम में अस्त होने लगता है तो हर वस्तु का सजदा पूर्व की ओर होता है। किसी समय भी कोई

ज्ञानियों ने कहा है, "ख़ुदा को समझने के लिए हर पत्री एक बड़ा ग्रन्थ है" लेकिन अपनी असावधानी के कारण इतने प्रमाणों के होते हुए भी ख़ुदा की तौहीद और परलोक के बारे में इनसान भटक जाता है।

वस्तु अपने नैसर्गिक सजदे में सूरज का साथ नहीं देती। फिर अगर एक इनसान, जो एक अधिकार-सम्पन्न सृष्ट-जीव है, ख़ुदा को सजदा न करे, बल्कि उसके सामने अकड़े या सूरज और चाँद को सजदा करे तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह स्वयं तो ख़ुदा के सामने अकड़ता है, लेकिन उसके पूरे अस्तित्व की छाया ख़ुदा के आगे बिछी हुई है। या वह ख़ुद तो सूरज और चाँद के आगे सजदा कर रहा है, लेकिन उसकी छाया इबराहीम (अलै०) जैसी प्रकृति रखती है जो तारों की पूजा से पूर्णतः विमुख होकर इस नीति पर कार्यरत है—

> "मैंने तो एकाग्र होकर अपना मुख उस सत्ता की ओर कर लिया जिसने ज़मीन और आसमानों की रचना की है और मैं हरगिज़ मुश्रिकों (बहुदेववादियों) में से नहीं हूँ।" (क़ुरआन, 6 : 79)

अधिकार-जगत् और सृजन-जगत् की यह असंगति "मैं कुछ गाता हूँ और मेरा तंबूरा कुछ गाता है" को चरितार्थ करती है।

यही तर्क है जिसको क़ुरआन ने दूसरे स्थान पर थोड़े अलग शब्दों में बयान फ़रमाया है :

> "क्या उन्होंने नहीं देखा उन चीज़ों की ओर जो ख़ुदा ने पैदा की हैं। लौटती हैं उनकी परछाइयाँ दाएँ और बाएँ से सजदा करती हुई अल्लाह को विनम्रता दिखाती हुईं।" (क़ुरआन, 16 : 48)

क़ुरआन में इस प्रकार के संकेत बहुत हैं और हर जगह उनसे तौहीद, आख़िरत और रिसालत की अत्यन्त महत्वपूर्ण हक़ीक़तों की ओर ध्यान दिलाया गया है। जो लोग तर्कशास्त्र के नियमों के क्रम के बिना कोई बात नहीं समझ सकते हैं, उनके लिए निस्सन्देह इन संकेतों के अन्दर कोई शिक्षा नहीं है, लेकिन अरब जैसी संवेदनशील जाति इस प्रकार के संकेतों से न केवल यह कि लाभ उठाती थी बल्कि उनका असली बौद्धिक आहर इन संकेतों ही में था। यह बात बुद्धि के प्रशिक्षण के लिए भी बहुत लाभदायक है और प्रभाव की दृष्टि से तो संकेतों की भाषा स्पष्टवादिता के मुक़ाबले में सदैव प्रभावकारी समझी गई है। हम हज़ारों पृष्ठों के पढ़ने के बाद भी अपने हृदय पर वह प्रभाव नहीं ले सकते जो तुग़लक़ाबाद और प्राचीन दिल्ली के खण्डरों पर एक उचटती नज़र डालकर कर ले सकते हैं। जैसा कि किसी ने कहा है—

"खंडहर बन चुके द्वारों और दीवारों पर चित्रित बेल-बूटे अजम (ग़ैर-अरब) की महान स्थापत्य-कला को प्रकट करते है।"

2. अंतर्जगत् के प्रमाण

इनसान पहले ज़ाहिर (बाहरी दुनिया) पर नज़र डालता है। फिर जब बुद्धि और विवेक में परिपक्वता पैदा होती है, तब अपने अन्तःकरण की ओर ध्यान देता है। वैसे वास्तव में अन्तःकरण ही है जो उसके सामने ज़ाहिर को भी अनावरण करता है। अपने अन्तर से बेपरवाही का कारण यह नहीं होता कि इनसान का अन्तर उससे कहीं बहुत दूर है। नहीं, बल्कि इस बेपरवाई का वास्तविक कारण यह है कि मानव का अंतर उससे अत्यंत निकट होता है। इसका अर्थ यह है कि बाह्यजगत् के प्रमाणों का आधार वास्तव में अन्तःकरण के प्रभाव ही हैं। धरती व आकाश के प्रमाणों में से कोई प्रमाण ऐसा नहीं है जिसकी आधारशिला किसी आंतरिक प्रमाण पर न हो। इसी पर हमारे सभी प्रमाणों की इमारत क़ायम है। अगर ये अन्तरात्मा के प्रमाण न होते तो जिस प्रकार जड़ वस्तुओं और पशुओं के लिए यह समस्त संसार अन्धकारमय है, उसी तरह इनसान के लिए भी यह अन्धकारमय होता। अतः जो मन्द बुद्धिवाले धरती व आकाश की निशानियों पर विचार नहीं करते, उनके लिए यह सम्पूर्ण संसार पूर्णतः निरुद्देश्य और निरर्थक है और क़ुरआन ने उन्हें पशुओं से भी अधिक बुद्धिहीन बताया है।

अब हम उस अन्तःकरण की ओर ध्यान देते हैं जिसके प्रमाण हमसे बहुत निकट भी हैं और बहुत स्पष्ट भी, मनमोहक भी हैं और मज़बूत भी, जिनकी ओर क़ुरआन मजीद ने इन शब्दों में ध्यानाकर्षित कराया है—

> "और धरती में निशानियाँ हैं विश्वास करनेवालों के लिए और स्वयं तुम्हारे अन्तःकरण में भी, क्या तुम नहीं देखते ?" (क़ुरआन, 51 : 20- 21)

इस आयत की वर्णन-शैली बता रही है कि अन्तःकरण के प्रमाण बहुत निकट भी हैं और बहुत स्पष्ट भी। अतः अल्लाह तआला ने आश्चर्य प्रकट किया है कि इतनी निकटता और इतना स्पष्ट होने के बावजूद वे इनसान को नज़र क्यों नहीं आते। इनसान के लिए कठिन है कि वह समस्त प्रमाणों को अपनी ज्ञान-परिधि में ला सके हम केवल कुछ ऐसे प्रमाणों की ओर संकेत करेंगे जो क़ुरआन मजीद में बयान हुए हैं और जो अत्यन्त स्पष्ट हैं :

(क) प्राकृतिक अनुबन्ध

तौहीद (एकेश्वरवाद) के अन्तःकरण के प्रमाणों में सबसे पहला प्रमाण वह है, जिसकी व्याख्या हमने अपनी पुस्तक "शिर्क की हक़ीक़त" में की है। मानव-अन्तःकरण में एक वास्तविक अनुग्रह-कर्ता के होने का बोध सबसे प्राचीन और सबसे अधिक स्पष्ट है। वहाँ हमने वैज्ञानिकों के इस दावे का खण्डन किया है कि इनसान के अन्दर सबसे अधिक प्राचीन भावना भय की भावना है जो जगत् की प्रादुर्भूत चीज़ों से पैदा हुई और उसी से उनकी उपासना की धारणा ने जन्म लिया। हमने प्रमाणों से साबित किया है कि भय की भावना के पैदा होने के लिए यह बात अनिवार्य है कि इससे पहले जीवन और जीवन के लिए आवश्यक सामग्री के नेमत होने का विवेक इनसान में हो। जब तक जीवन के नेमत (ईश्वरीय अनुग्रह) होने का एहसास न हो उस समय तक इसके सम्बन्ध में किसी भय का एहसास कोई अर्थ नहीं रखता अनुग्रह के बोध से अनिवार्यतः एक अनुग्रहकर्ता का बोध होता है। फिर अनुग्रह और अनुग्रहकर्ता के बोध से मानव में अनुग्रहकर्ता के प्रति आभार व्यक्त करने का भाव और कल्पना पैदा होती है। यह भावना न तो केवल प्रेम व आदत की उपज है और न केवल सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के ऊपरी हाव-भाव का परिणाम है, बल्कि पशुओं तक में यह भावना मौजूद है। हम जिन पशुओं को अपने घरों में पालते हैं, उनके अन्दर भी अपनी आँखों से इसका अवलोकन करते हैं। एक बिल्ली से लेकर एक हाथी तक जिनपर भी हम कोई एहसान करते हैं, वे अपनी विभिन्न अदाओं की भाषा में अपनी कृतज्ञता एवं आभार प्रकट करते हैं। यही भावना, उत्तम से उत्तम उन्नत रूप में इनसान के अन्दर मौजूद है, जिसको हम दूसरे शब्दों में न्याय कहते हैं, जिसके कारण इनसान का यह हाल है कि जिस माप से उसके लिए नापा जाता है उसी माप से दूसरों के लिए नापता है, और इसी न्याय की भावना ने विशुद्ध ख़ुदापरस्ती और तौहीद की आधारशिला रखी और यह तौहीद के अत्यंत महत्वपूर्ण प्रमाणों में से है। इस प्राकृतिक न्याय को अपेक्षित एक ओर तो यह है कि अल्लाह के अनिवार्य हक़ (अधिकार) को पूरी तरह स्वीकार किया जाए और दूसरी ओर उसको अपेक्षित यह है कि जो अधिकार ख़ुदा के लिए अनिवार्य हैं उनमें अकारण दूसरों को (ख़ुदा का) साझी न ठहराया जाए। इसको क़ुरआन में "ज़ुल्मे-अज़ीम" अर्थात् सबसे बड़ा अन्याय और अधिकार-हनन की संज्ञा दी गई है, जिसका अर्थ दूसरे शब्दों में यह भी हुआ कि सबसे बड़ा न्याय एकेश्वरवाद (तौहीद) है और

सबसे बड़ा अन्याय बहुदेववाद (शिर्क) है।

इस न्याय को क़ुरआन ने मानव-स्वभाव के अनुबन्ध का नाम दिया है —

"और लोगों को याद दिलाओ वह वक़्त जबकि तुम्हारे रब ने आदम के बेटे से अर्थात् उनकी पीठों से उनकी सन्तानों को निकाला और उन्हें स्वयं उनके ऊपर गवाह बनाते हुए पूछा था, 'क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ?' उन्होंने कहा, 'अवश्य ही आप हमारे रब हैं, हम इस पर गवाही देते हैं।' यह हमने इसलिए किया कि कहीं तुम क़ियामत के दिन यह न कहो कि, 'हम तो इस बात से बेख़बर थे।"

(क़ुरआन, 7 : 172)

इस वचनबद्धता की वास्तविकता पर हमने पुस्तक 'शिर्क की हक़ीक़त' में भी लिखा है, जिसके कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं —

"कुछ लोग इसपर आक्षेप करते हैं कि ज्ञात नहीं कि इस प्रकार का कोई अनुबन्ध हुआ है? हमें न तो इस प्रश्न 'क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ?' की कोई ख़बर है न इस 'अवश्य आप ही हमारे रब हैं' की। ये दोनों बातें प्रमाण चाहती हैं, विशेषतः जबकि इसका महत्व इतना अधिक हो कि क़ियामत के दिन यह अनुबन्ध प्रत्येक आदमी पर अवश्य ही प्रमाण होगा। लेकिन आश्चर्य है कि लोगों को क्या यह बात मालूम नहीं है। एक इनसान पानी की एक तुच्छ बूँद के रूप में माँ के पेट में पड़ता है। माँ, नहीं मालूम कितनी कठिनाइयाँ झेलकर और कितने कष्ट उठाकर, नौ महीने उसको पेट के अन्दर ही पालती है। अपने रक्त और मांस से उसका पोषण करती है। फिर जान की बाज़ी खेलकर मांस के एक लोथड़े के रूप में उसको जन्म देती है। फिर अपने शरीर का एक-एक ख़ून का क़तरा दूध बनाकर उसको पिलाती है और वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद उसको इस योग्य बनाती है कि वह धरती पर चल-फिर सके। इसके बाद माँ-बाप के त्याग, उनके स्नेह और उनकी देख-रेख और प्रशिक्षण व संरक्षण का समय आता है जो एक लम्बे समय तक जारी रहता है। इस अवधि में माँ-बाप जो कुछ अपने लिए चाहते हैं उससे अधिक बच्चे के लिए चाहते हैं। वे ख़ुद कम खाते हैं ताकि उसको खिलाएँ; वे ख़ुद कष्ट उठाते हैं ताकि बच्चे को आराम मिले; वे अपनी जान जोखिम में डालते हैं ताकि बच्चा ख़तरे से सुरक्षित रहे। माँ-बाप के प्रेम, अनुकम्पा और जान जोखिम का यह क्रम है जो एक बच्चे को पाल-पोसकर जवान बनाता है। अगर इसमें से एक कड़ी भी टूट जाए तो बच्चे का जीवन ही ख़तरे में पड़ जाए। अब मान लीजिए बच्चा जवान हुआ और माँ-बाप वृद्धावस्था को पहुँचे। अब वे (माँ-बाप) मुहताज हैं और बेटा स्वावलम्बी। लेकिन बेटा उनका कोई ध्यान नहीं रखता और अगर कोई व्यक्ति उसको माँ-बाप के अधिकार और कर्तव्य याद दिलाए तो वह उत्तर देता है कि मुझे नहीं मालूम कि माँ-बाप के कुछ अधिकार व कर्तव्य भी हैं, मुझे इस प्रकार के किसी फ़र्ज़ या ज़िम्मेदारी की कोई ख़बर नहीं है, मैंने इस प्रकार के किसी अधिकार

का कभी इक़रार नहीं किया है, तो हर व्यक्ति ऐसे बेटे को कमीना और धूर्त कहेगा, क्योंकि वह ऐसे अधिकार और ऐसी ज़िम्मेदारी का इनकार कर रहा है जिससे अधिक सिद्ध और सर्वमान्य ज़िम्मेदारी कोई नहीं। यह ज़िम्मेदारी हर अधिकार के साथ स्वयं लगी हुई होती है। यह बिना लिखित लेख्य, बिना गवाही के सिद्ध और बिना याचना के मान्य है। यह अधिकार और ज़िम्मेदारी का वह प्राकृतिक अनुबन्ध है जिससे अधिक कोई अनुबन्ध भी इनसान को याद नहीं।"

"इसी आधार पर एक इनसान उस औरत के लिए भरण-पोषण और मर्यादा की सुरक्षा का अधिकार स्वीकार करता है जिससे वह लाभान्वित होता है। इसी आधार पर व्यक्ति पर अपने कुटुम्ब और क़बीले की सुरक्षा और सहायता के कर्तव्य लागू होते हैं। इसी आधार पर एक नगर की नगरपालिका नागरिकों की कमाई में भागीदार होती है। इसी आधार पर एक राज्य अपनी प्रजा से माँग करता है कि वे अपने ज्ञान व योग्यता, समय व जान और माल की स्वतंत्रता में उसको भागीदार बनाएँ, और अगर राज्य का अस्तित्व किसी ख़तरे में पड़ जाए तो उसके बचाव के लिए सब कुछ बलिदान कर दें। अब कल्पना कीजिए कि एक व्यक्ति एक औरत के सतीत्व का मालिक तो बन बैठा, लेकिन उसके भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी और उसके अधिकारों और उसके प्रति अपने कर्तव्यों से इनकार करता है और कहता है कि मैंने इस प्रकार का कोई इक़रार नहीं किया है। या एक नागरिक नगरपालिका की सड़कों पर तो चलता है, उसके स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी प्रबन्ध से लाभ तो उठाता है, उसके पार्कों और वाटिकाओं से लाभान्वित तो होता है, उसके द्वारा प्रकाशीय प्रबंधों से तो प्रकाश प्राप्त करता है, उसके स्थापित किए हुए स्कूलों से तो लाभ उठाता है, लेकिन जब उसकी माँगें पूरी करने का समय आए तो वह उत्तर दे दे कि मैं इस माँग की ज़िम्मेदारी से बरी हूँ। या इसी तरह एक व्यक्ति एक राज्य के अंदर नागरिकता के समस्त अधिकारों से लाभान्वित हो रहा हो, उसकी शान्ति और न्याय-व्यवस्था का फ़ायदा उठा रहा हो, उसके क़ानून और व्यवस्था के बल पर एक मिल्कियत का मालिक, एक पुत्र का पिता, एक पत्नी का पति, एक राज्य का नागरिक हो, लेकिन जब राज्य के मुतालबे का वक़्त आए तो कह दे कि मैं इस प्रकार की कोई ज़िम्मेदारी स्वीकार नहीं करता। मैंने इस प्रकार के भार उठाने और इस प्रकार की जोख़िम में पड़ने का. . . . कभी इक़रार नहीं किया था, तो क्या उसका उत्तर सही होगा? पत्नी कहेगी यह बहाना ग़लत है जिस दिन तूने मेरे सतीत्व का स्वतंत्रतापूर्वक भोग किया और मैंने अपना शरीर तेरे सुपुर्द किया, उसी दिन तूने इन सारी ज़िम्मेदारियों के लिए मुझसे एक मज़बूत वादा किया है और सारी दुनिया पत्नी को सत्य पर और पति को निन्दनीय और कमीना ठहराएगी। यही दण्ड एक क़बीला अपने कायर और कर्तव्य से अनभिज्ञ व्यक्ति को देगा। यही दण्ड एक नगरपालिका अपने दोषी नागरिक को और एक शासन अपने नमक हराम निवासी को देगा, और सम्पूर्ण संसार इस दण्ड को बिल्कुल उचित और

विधि-संगत ठहराएगा, क्योंकि हर अधिकार के साथ कर्तव्य का जुड़ा होना इतना स्पष्ट है कि आकाश का सूर्य भी इतना स्पष्ट नहीं है।"

"यहाँ तक कि इस अधिकार और ज़िम्मेदारी के प्राकृतिक और व्यापक क़ानून के आधार पर हमारे घर की पली हुई मुर्ग़ी और हमारे थान पर बंधी गाय और घोड़े, हमारी वाटिका में उगे हुए फूल और हमारे बाग़ में लगे हुए वृक्ष के प्रति भी हमारे कुछ कर्त्तव्य होते हैं, और हम अत्यन्त निन्दनीय व्यक्ति होंगे, यदि इसका इनकार कर दें। हम जिस मुर्ग़ी के अण्डे और चूज़े खाते हैं। अनिवार्य है कि बिल्लियों और कुत्तों से उसकी रक्षा करें, हम जिस गाय का दूध पीते हैं और जिस घोड़े पर सवार होते हैं हम पर उसके प्रति कर्त्तव्य होता है कि हम उनके घास और दाने का प्रबन्ध करें, हम जिस पौधे के फूल से सुरभित और जिस वृक्ष के फल का स्वाद लेते हैं हम पर अनिवार्य है कि उसको सींचें, गोड़ें, खाद दें और सर्दी की आफ़त और लू की मुसीबत से बचाएँ। हम उनके प्रति अपने इस कर्त्तव्य का इनकार नहीं कर सकते। हमने जिस दिन से किसी प्रकार का सुख व आनन्द प्राप्त किया, उसी दिन उनके अधिकार का इक़रार किया है। यह एहसास और ज़िम्मेदारी का वह अनुबन्ध है जो प्रत्येक लाभकारी और लाभ प्राप्त करनेवाले के बीच स्वतः लागू हो जाता है और इनसान की प्रकृति और दुनिया के प्रचलन में इससे अधिक कोई चीज़ महत्वपूर्ण और आदरणीय नहीं।"

"अब विचार कीजिए कि जब हमको माँ-बाप के अधिकारों से इनकार नहीं है तो इनसे कहीं बढ़कर उसका अधिकार है जिसने माँ-बाप को भी पैदा किया। जब हमारे लिए पत्नी के अधिकार से इनकार की गुंजाइश नहीं है तो उसके अधिकार से इनकार कैसे सम्भव है जिसने पुरुष की शांति के लिए नारी को पैदा किया। जब हम कुटुम्ब और क़बीला, शासक और राज्य का अधिकार मानते हैं और इसको एक सामाजिक अनुबन्ध का दर्जा देते हैं तो वह जिसने कुटुम्ब और क़बीले को अस्तित्व प्रदान किया, जिसने शासक और राज्य के निर्माण के लिए इनसानी स्वभाव में अपनत्व भाव का आकर्षण और सामाजिकता को पसंद करने का भाव प्रदान किया, इनसे कहीं बढ़कर इस बात का अधिकारी है कि हम उसके रब होने का इक़रार करें। जब हम मुर्ग़ी और बिल्ली तक का अधिकार मानते हैं, गाय और घोड़े तक के प्रति मौनतः अपने कर्त्तव्यों और दायित्व को स्वीकार करते हैं, तो फिर ख़ुदा के प्रति अपने कर्त्तव्यों से हमें क्यों इनकार हो। जिसने गाय और घोड़े, वन और वाटिका, नदी और पहाड़, सूर्य और चन्द्रमा, हवा और पानी, आग और मिट्टी सबको पैदा किया और सबको हमारे अस्तित्व के स्थायित्व के लिए अनुकूल और लाभप्रद बनाया।"

इस विवरण से यह बात सिद्ध हुई कि न्याय इनसान की प्रकृति है और इस प्रकृति की अपेक्षा यह है कि इनसान अपने अनुग्रहकर्ता के अधिकारों का इक़रार

करे और दाता का सबसे बड़ा अधिकार यह है कि उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाए और यह कृत्तज्ञता प्रकाशन किसी और के लिए न हो। यही वह हक़ीक़त है जो कुछ हदीसों में इस प्रकार बताई गई है कि बन्दे पर ख़ुदा का सबसे बड़ा हक़ यह है कि किसी को उसका साझी न ठहराए। यही तर्क है जो हज़रत इबराहीम (अलै०) ने दिया है —

"और इन्हें इबराहीम का वृत्तान्त सुनाओ जबकि उसने अपने बाप और अपनी जातिवालों से पूछा था कि 'ये क्या चीज़ें हैं जिनको तुम पूजते हो?' उन्होंने उत्तर दिया, 'कुछ मूर्तियाँ हैं जिनकी हम पूजा करते हैं और उन्हीं की उपासना में हम लगे रहेंगे।' उसने पूछा, 'क्या ये तुम्हारी सुनती हैं जब तुम इन्हें पुकारते हो? क्या ये तुम्हें कुछ लाभ या हानि पहुँचाती हैं?' उन्होंने उत्तर दिया, 'नहीं, बल्कि हमने अपने बाप-दादा को ऐसा ही करते पाया है।' इसपर इबराहीम ने कहा, 'कभी तुमने उन चीज़ों को देखा भी जिनकी बन्दगी तुम और तुम्हारे पिछले बाप-दादा करते रहे? मेरे तो ये सब दुश्मन हैं, सिवाय जगत् के प्रभु पालनहार के जिसने मुझे पैदा किया, फिर वही मेरा मार्गदर्शन करता है। जो मुझे खिलाता और पिलाता है और जब मैं बीमार हो जाता हूँ तो वही मुझे स्वस्थ करता है। जो मुझे मारेगा और फिर मुझको जीवित करेगा और जिससे मुझे आशा है कि बदला दिए जाने के दिन वह मेरे गुनाह (पाप) क्षमा करेगा।" (क़ुरआन, 26 : 69-82)

अर्थात् एक उपकार करनेवाली हस्ती, जिसने पैदा किया और पैदा करके यूँ ही नहीं छोड़ दिया, बल्कि हमको प्रकृति और प्रकाशना द्वारा मार्गदर्शन किया, जिसने हमें खिलाया-पिलाया, जिसने हमें बीमारी के बाद स्वास्थ्य प्रदान किया, जो हमें मौत देती है और फिर हमारे कर्मों का बदला देने के लिए हमें पुनः जीवन प्रदान करेगी। और जिसकी दया और कृपा से आशा है कि उसका व्यवहार परलोक में भी हमारे साथ अच्छा होगा। निस्सन्देह उसी हस्ती को इसकी पात्रता प्राप्त है कि उसकी बन्दगी की जाए। इसकी गवाही और प्रमाण हमारे पास मौजूद हैं। हमारे स्वाभाविक न्याय की माँग है कि हम दाता के उपकार का हक़ उसके प्रति कृतज्ञता दिखाकर अदा करें, और इसी न्याय ही की माँग है कि जो हक़ अल्लाह तआला का है इसमें दूसरे को साझी न ठहराएँ, इसलिए कि इसमें किसी के साक्षी होने का कोई प्रमाण नहीं पाया जाता। यह सबसे बड़ा अन्याय और स्पष्टतः घोर अत्याचार है।

(ख) ज्ञान और विश्वास की स्वाभाविक माँग

मानव-स्वभाव की दूसरी अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसको अन्धकार की अपेक्षा ज्ञान, बेचैनी और परेशानी की अपेक्षा सुकून और आत्मतुष्टि

स्वाभाविक रूप से पसन्द है। इनसान इस बात को सहन नहीं कर सकता कि इस जगत् का उसके सामने कोई हल न हो। उसके आरम्भ और अन्त के बारे में वह पूर्णतः अन्धेरे में हो, वह अपने अस्तित्व के उद्देश्य और उसकी भलाई और बुराई से बिल्कुल बेख़बर हो। वह कुछ न जाने कि कहाँ से आया है और कहाँ जाएगा वह अपने साथ क्या मामला करे और दूसरों के साथ किस तरह जीवन गुज़ारे। उसकी प्रकृति चाहती है कि इन समस्त प्रश्नों पर विचार करे, इनके समाधान की खोज करे और प्रत्येक पर नकारात्मक या स्वीकारात्मक निर्णय ले। वह यह तो कर सकता है कि किसी प्रश्न का कोई ग़लत उत्तर पैदा कर ले और उसी पर जम जाए, लेकिन यह नहीं कर सकता कि वह इन प्रश्नों पर सिरे से कोई विचार ही न करे। इनसान के लिए अन्धकार में भटकते फिरना बिल्कुल असम्भव है।

इनसान की यही वह स्वाभाविक माँग है जिसके कारण वह खोज की विभिन्न घाटियों में ठोकरें खाता रहा है और बहुधा उसने कोई सही चीज़ न पाकर किसी ग़लत चीज़ को ही अपना लिया है, लेकिन यह कभी नहीं हुआ कि वह इन प्रश्नों से बिल्कुल बेपरवाह होकर बैठ रहा हो। यह एक स्वाभाविक प्यास है जिसे बुझाना ज़रूरी है और जिस चीज़ से यह प्यास पूर्णतः बुझ जाए, वही इसका सही उत्तर है। यह प्यास केवल अल्लाह पर ईमान लाने से बुझती है, इसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ें केवल अस्वाभाविक बहाने हैं। जिनसे अपनी प्रकृति को धोखा तो दिया जा सकता है किन्तु आत्मशान्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। आत्मशान्ति केवल अल्लाह को मानने में है —

"सुन लो, केवल अल्लाह की याद से ही दिलों को शांति प्राप्त होती है।"

(कुरआन, 13 : 28)

यही वह प्रकाश है, जिसके चमकते ही यह पूरा संसार और इसका सम्पूर्ण आरम्भ और अन्त आलोकित हो जाता है—

"अल्लाह आकाश व धरती का प्रकाश है।" (कुरआन, 24 : 35)

इसको पा लेने के बाद इनसान को समस्त प्रश्नों का उसे उत्तर मिल जाता है। अब वह इस संसार के आरम्भ व अन्त की कल्पना कर सकता है, इस विस्तृत संसार में अपने अस्तित्व का स्थान निश्चित कर सकता है और जान सकता है कि उसे क्या करना चाहिए? अब उसके लिए नैतिक एवं आर्थिक सिद्धान्त, राजनीतिक क़ानून सब निश्चित हो सकते हैं। अब वह अपने अतीत व भाविष्य दोनों के बारे में स्पष्ट ज्ञान के आधार पर एक फ़ैसला कर सकता है, अब वह मात्र अटकल और कल्पना के तीर-तुक्के नहीं चलाएगा। अब उसे अपनी बुद्धि

और चेतना की ओर से बदगुमानी (सन्देह) भी नहीं रहेगी और स्वयं को निराशा व तुच्छता की दृष्टि से भी नहीं देखेगा और जिस राह में जो क़दम भी रखेगा वह अत्यन्त मज़बूत और स्थिर होगा।

इसके बाद अगर कोई व्यक्ति इस समाधान को इस कारण स्वीकार नहीं करता कि सम्भव है कि उसकी बुद्धि एवं चेतना उसे धोखा दे रही हों तो यह निकृष्टतम प्रकार का भ्रमवाद है। निस्सन्देह मनुष्य की चेतना ग़लती कर जाती है, किन्तु वह ग़लती ही के लिए बनी है, ऐसा नहीं है। निश्चय ही हमारी बुद्धि कभी निष्कर्ष तक पहुँचाने में चूक भी जाती है, लेकिन निश्चित रूप से वह इनसान को धोखा देने ही के लिए नहीं है। यह सही है कि इनसानों के मतों और उनके फ़ैसलों में बहुत गम्भीर भेद पाए जाते हैं, लेकिन उनके अन्दर सहमति के जो पहलू हैं, उनको अनदेखा कर देना स्वयंसिद्ध तथ्य का इनकार है। यह सन्देह इनसानी स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध है, यह एक बनावटी हालत है जो खींचतान कर इनसान ने अपनाई है। वरना उसके जीवन का एक-एक कार्य उसके विश्वास का साक्षी है। वह विश्वास करने पर मजबूर है और बिना विश्वास के एक क़दम भी नहीं उठा सकता। वह एक 'ला अहदी' (मैं एक नहीं) कहने में अपने अनेकों विश्वासों का एलान करता है और उसके समस्त विश्वासों में सबसे बड़ा विश्वास उस हस्ती पर विश्वास है जिसकी गवाही उसे अपने अन्दर और अपने बाहर से मिल रही है और जिसको माने बिना यह समस्त संसार पूर्णत: अन्धकार ही अन्धकार है और इनसान के लिए यह असम्भव है कि वह अन्धकार पर राज़ी हो सके जब तक कि वह अपनी प्रकृति को ही बिगाड़ न डाले। अत: ख़ुदा के अस्तित्व और उसके समस्त गुणों से सज्जित होने की सबसे बड़ी गवाही यह है कि उसके बिना इस संसार की गुत्थी का और ख़ुद अपने अस्तित्व का इनसान को कोई हल नहीं मिलता। केवल यही एक हल है जो सन्तोषप्रद है, जिससे समस्त उलझनें सुलझ जाती हैं। इस हल के सही होने और सच होने का सबसे बड़ा सुबूत यह है कि यह हृदय की तृष्णा की पूर्ण तृप्ति और बुद्धि की जिज्ञासा का वास्तविक जवाब है। इसके लिए किसी और बौद्धिक और लिखित सुबूत की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि तर्क वहाँ सफल होता है जहाँ तर्क असल दावे से अधिक स्पष्ट हो। यहाँ ख़ुद दावा इतना स्पष्ट है कि कोई तर्क इससे अधिक स्पष्ट नहीं।

अत: एक ख़ुदा को मानना, जो समस्त पूर्णतम गुणों से सज्जित है, इनसान की प्रकृति में अन्तर्निहित है। यह सत्य है। इसके बाद अगर किसी ने कुछ और ख़ुदा भी बना लिए हैं तो यह गुमराही है, क्योंकि एक ख़ुदा को मान लेने के बाद प्रकृति की

माँग पूरी हो जाती है । अब इससे किसी अतिरिक्त चीज़ का मानना वास्तविकता पर एक बिल्कुल अनावश्यक अभिवृद्धि है और यह खुली पथभ्रष्टता और गुमराही है ।

"फिर सत्य के बाद पथभ्रष्टता के अतिरिक्त कुछ और शेष नहीं रहता"

(क़ुरआन 10 : 32)

इसी वजह से क़ुरआन ने जगह-जगह फ़रमाया है कि जो लोग ख़ुदा के साथ किसी और को साझी ठहराते हैं उनके पास कोई प्रमाण नहीं है । अर्थात् एक ख़ुदा को मानना तो इसलिए आवश्यक है कि इनसानी स्वभाव इसके बिना संतुष्ट नहीं हो सकता और इसकी गवाही इनसान के अन्दर और बाहर मौजूद है । लेकिन इसके साथ दूसरों को ख़ुदाई में साझी बनाना एक बिल्कुल प्रमाणहीन बात है :

"अतः सर्वोच्च है अल्लाह, वास्तविक सम्राट, कोई पूज्य-प्रभु उसके अतिरिक्त नहीं, स्वामी है महिमाशाली सिंहासन (अर्श) का । और जो कोई अल्लाह के साथ किसी और को पुकारेगा, जिसके लिए उसके पास कोई प्रमाण नहीं, तो उसका हिसाब उसके रब के पास है । ऐसे विधर्मी कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते ।"

(क़ुरआन, 23 : 116-117)

अर्थात् एक ख़ुदा की गवाही तो इनसान अपने अन्दर और बाहर से पा रहा है, इसलिए उसको मानना बुद्धि और प्रकृति के अनुकूल है, लेकिन उसके अतिरिक्त अगर किसी और को भी वह ख़ुदाई में साझी ठहराता है, जिसका कोई प्रमाण नहीं है, तो यह इनसान का दुर्भाग्य है । इन आयतों से मालूम हुआ कि एक मुशरिक (बहुदेववादी) के मुक़ाबले में एक तौहीद (एकेश्वरवाद) को माननेवाले का काम यह नहीं है कि वह ख़ुदा के अस्तित्व को सिद्ध करे और उसके साझियों के खण्डन के लिए प्रमाण दे, क्योंकि मुशरिक एक ख़ुदा को तो प्रत्येक स्थिति में मानता ही है, यह बात तो बहुदेववादी और एकेश्वरवादी के बीच निर्विवाद है, बाक़ी रहे वे साझीदार और वे ईश समकक्ष जो उसने अपने मन से गढ़ लिए हैं, तो पहले उनके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए प्रमाणों की ज़रूरत है, न कि उनके खण्डन हेतु प्रमाणों की । उनके खण्डन के लिए तो यह तर्क पर्याप्त है कि उनका कोई प्रमाण मौजूद नहीं है ।

(ग) मानव-प्रकृति की उच्चता

तौहीद (एकेश्वरवाद) का एक बहुत बड़ा अन्तःकरण से संबंधित प्रमाण मानवीय प्रकृति की उच्चता है । इनसान स्वभावतः तिरस्कार व अधीनता और बन्दगी व दासता से नफ़रत करता है और श्रेष्ठ सरदारी और प्रतिष्ठा का इच्छुक है । वह जिस समय अपनी शक्तियों और योग्यताओं के करिश्मे देखता है, तो

महसूस करता है कि इस पूरे विश्व में कोई एक अस्तित्व भी नहीं है जो उसकी बराबरी कर सके। इस उच्चता की भावना का एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि वह सारी सृष्टि में श्रेष्ठ और धरती पर ख़ुदा का नियुक्त ख़लीफ़ा है और प्राकृतिक रूप में इस श्रेष्ठता और इस प्रतिनिधित्व का एहसास लेकर इस संसार में आया है। अगर इस पद के अनुसार उसमें श्रेष्ठता और उच्चता का एहसास न रखा गया होता तो निश्चय ही वह इस पद की ज़िम्मेदारियों को न संभाल सकता। यह हक़ीक़त बड़े ही सुन्दर रूप में क़ुरआन की इस आयत "हमने इस अमानत को आकाशों और धरती और पर्वतों के सामने प्रस्तुत किया" (क़ुरआन, 33 : 72) में बयान हुई है, लेकिन यहाँ उसके विस्तार में जाने की गुंजाइश नहीं है। यही एहसास है जिसके कारण हम देखते हैं कि इनसान अधिकतर ख़ुदा होने का दावा कर बैठता है। कभी "मैं सबसे बड़ा रब हूँ" कभी "मैं ज़िन्दा करता हूँ और मैं मारता हूँ" के घमण्ड का प्रदर्शन करता है, कभी स्वयं को क़ौमों का स्वामी और जल-थल का सुलतान समझने लगता है और बन्दे की जगह, उद्दण्ड बनकर ख़ुदा की धरती पर अपना क़ानून और अपना आदेश चलाने लगता है। लेकिन श्रेष्ठ होने के इस एहसास के साथ जब वह देखता है कि उसकी ये समस्त शक्तियाँ और योग्यताएँ बचपन और बुढ़ापे की दो दुर्बलताओं के बीच घिरी हुई हैं तो उसे विवश होकर ख़ुदाई का सिंहासन छोड़कर बन्दगी की पंक्ति में आकर खड़ा होना पड़ता है और अपने उस माथे को, जिसे किसी के आगे झुकाना नहीं चाहता था, एक ऐसी शक्ति के आगे झुकाना पड़ता है जो समस्त शक्तियों और योग्यताओं का स्रोत और सम्पूर्ण धरती व आकाश का स्वामी और प्रबन्धक है। स्पष्ट है कि यह विनय-भाव इनसान इसलिए नहीं अपनाता कि उसमें स्वभाव से ही छोटा होने का एहसास या किसी को ख़ुदा बनाने का शौक़ है। उसमें वास्तविक उमंग तो ख़ुदा बनने के लिए है, लेकिन जब वह अपने हौसलों की ऊँची उड़ानों के साथ अपनी शक्तियों और योग्यताओं की सीमितता को देखता है तो विवश होकर उसे एक अनदेखी हस्ती के समक्ष स्वयं को समर्पित कर देना पड़ता है। ऐसा करने के लिए इनसान लाचार है। अगर वह इससे बच सकता तो निश्चिय ही उसकी इच्छा यही होती कि वह इससे स्वयं को बचा ले जाए, लेकिन वह मजबूर है कि एक उच्चतम शक्ति का इक़रार करे जिसकी अपार शक्ति से यह सम्पूर्ण कारख़ाना अस्तित्व में आया और जिसकी तत्वदर्शिता और प्रबन्ध से सम्पूर्ण व्यवस्था चल रही है। यह मन का अहंकार और अपनी महानता का दावा इनसान में इतना प्रबल एवं तीव्र है कि अधिकतर

यह किसी प्रकार भी सत्य को स्वीकार करने पर राज़ी नहीं होता। हज़रत इबराहीम (अलै०) और एक बादशाह का शास्त्रार्थ (मुनाज़िरा) क़ुरआन की सूरा-2 (बक़रा) में मौजूद है जो दावा करता था कि "मैं ज़िन्दा करता हूँ और मैं मारता हूँ, इसलिए मैं ही रब हूँ।" हज़रत इबराहीम (अलै०) ने यह कहकर कि "अल्लाह सूरज को पूर्व दिशा से निकालता है तुम इसे पश्चिम दिशा से उदित कर दो", उसकी असमर्थता को बिल्कुल बेपर्दा कर दिया और वह इस विवाद से हक्का-बक्का होकर रह गया, लेकिन मन के अहंकार का शैतान इतना उद्दण्ड है कि लाजवाब होकर भी वह ख़ुदा को स्वीकार करने पर राज़ी न हुआ। लेकिन जिनकी बुद्धि ठीक और प्रकृति अविकृत होती है वे अपनी श्रेष्ठता और निर्बलता दोनों के मध्य संतुलन बनाकर रखते हैं। वे एक तत्वदर्शी और प्रबन्धक हस्ती के आगे झुककर अपनी निर्बलता की परिपूर्ति और अपनी असमर्थता का इलाज पा लेते हैं और उनका हृदय संतुष्ट व शान्त हो जाता है। इसके बाद अगर कोई व्यक्ति किसी अन्य चौखट पर झुकता है तो उसकी मिसाल अधम प्रकृति के भिक्षुक जैसी है जो एक द्वार से अपनी आवश्यकता पूरी कर लेने के बावजूद द्वार-द्वार माँगता फिरता है और उसके स्वभाव की अधमता इस हद को पहुँच गई है कि प्रायः अपने से अधिक तिरस्कृत व बेबस मुहताजों के आगे हाथ फैला देने में भी उसको कोई शर्म नहीं आती।

स्पष्ट है कि यह हालत इनसान की वास्तविक प्रकृति नहीं है बल्कि प्रकृति की विकृत स्थिति है, जिस तरह भिक्षुओं की अधिकता के बावजूद हम विश्वास रखते हैं कि इनसान की वास्तविक प्रकृति स्वाभिमान और आत्म-सम्मान है, इसी प्रकार बहुदेववादियों की अधिकता के बावजूद इनसानी प्रकृति की वास्तविक माँग एकेश्वरवाद (तौहीद) है। एक औरत अपने आपको एक मर्द के हवाले इसलिए करती है कि वह अपने अन्दर एक अभाव और रिक्तता महसूस करती है जो एक निगराँ के बिना नहीं भर सकती। अब अगर कोई औरत ऐसी है जो इस रिक्तता को पूर्ण कर लेने के उपरांत भी दूसरों से आशनाई (दिललगी) करती फिरती है तो वह एक व्यभिचारिणी है जिसने अपनी पाक़दामनी और स्वाभिमान के सौंदर्य को बिल्कुल खो दिया है।

अतः जो व्यक्ति ख़ुदा को मानता है वह इसलिए नहीं मानता कि उसे ख़ुदा बनाने का शौक़ है, बल्कि इसलिए मानता है कि उसे ख़ुदा की आवश्यकता है। वह समस्त शक्तियों और योग्यताओं के बावजूद अपने अन्दर एक रिक्तता महसूस कर रहा है जो एक ख़ुदा को माने बिना नहीं भर सकती। उसको मान लेने

के बाद वह रिक्तता भर गई। अब अगर कोई उससे यह कहता है कि उस एक के सिवा कुछ और भी हैं जो आराधना एवं उपासना के अधिकारी हैं तो वह तो यह कहकर अलग हो जाएगा कि मेरे लिए एक ख़ुदा काफ़ी है। अगर तुम्हें दूसरी चौखटों पर भी माथा रगड़ने की अभिलाषा है तो यह अपमान सहन करो, मुझे इससे क्षमा करो।

इनसानी प्रकृति की इसी महानता की तरफ़ हज़रत यूसुफ़ (अलै०) ने अपनी इस वार्ता में संकेत किया है, जो उन्होंने अपने क़ैदखाने के साथियों से की थी :

> "मैंने अपने पूर्वजों इबराहीम, इसहाक़ और याक़ूब का तरीक़ा अपनाया है। हमारे लिए शोभनीय नहीं कि हम अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराएँ। यह अल्लाह का हमारे ऊपर और सारे लोगों पर एहसान है लेकिन अधिकतर लोग कृतज्ञता प्रकट नहीं करते। ऐ कारागार के साथियो! क्या ये बहुत-से अलग-अलग रब अच्छे हैं या वह एक अल्लाह जो सबको वश में रखनेवाला है? उसे छोड़कर तुम जिनकी बन्दगी कर रहे हो वे इसके सिवा कुछ नहीं हैं कि बस कुछ नाम हैं जो तुमने और तुम्हारे बाप-दादाओं ने रख लिए हैं। अल्लाह ने उनके लिए कोई प्रमाण नहीं उतारा। शासन-सत्ता अल्लाह के सिवा किसी के लिए नहीं है। उसने आदेश दिया है कि उसके सिवा तुम किसी की बन्दगी न करो। यही स्वाभाविक दीन (जीवन-प्रणाली) है, लेकिन प्रायः लोग जानते नहीं हैं।"
>
> (क़ुरआन, 12 : 38-40)

इस वार्ता के आरम्भिक भाग का सार यह है कि अल्लाह की बड़ी कृपा और दया है कि उसने अपने सिवा किसी की इबादत और बन्दगी का आदेश नहीं दिया और इनसान के अन्दर उच्चता और बड़ाई की जो अनुभूति रख दी गई है उसके आदर का स्वयं इतना ख़याल रखा कि ग़ैर के आगे झुकने के अपमान से उसे बचाया और केवल अपने ही आगे झुकने का आदेश दिया। लेकिन इनसान ने अल्लाह की इस नेमत के प्रति कृतज्ञता नहीं दर्शाई और अकारण उसने अपने अन्तःकरण की पवित्रता को बट्टा लगाया और अपने से अधिक तुच्छ और निम्न चीज़ों की पूजा की। इसके बाद फ़रमाया कि ख़ुदा को मानना एक ज़रूरत है और इनसान अपने आत्मगौरव के बावजूद इसलिए ख़ुदा को मानता है कि उसको माने बिना उसकी प्रकृति की रिक्तता पूर्ण नहीं होती। अब प्रश्न यह है कि सर्वोत्तम क्या है? क्या यह कि बहुत-से अलग-अलग स्वामी और रब हों और उन सबकी गुलामी की जाए, या यह कि केवल एक ही सर्वशक्तिमान ख़ुदा की फ़रमाबरदारी की जाए? स्पष्ट है कि स्वाभिमानी इनसान के लिए एक ही वास्तविक रब की ग़ुलामी पर्याप्त है। वह अन्य झूठे रब क्यों गढ़ेगा। रही यह बात कि उसी एक ने

कुछ दूसरों की बन्दगी का भी आदेश दिया हो तो इसके लिए सुबूत की ज़रूरत है और इसका कोई सुबूत मौजूद नहीं है। इसके बिल्कुल विरुद्ध उसका आदेश यह है कि अकेले उसकी बन्दगी की जाए और यही स्वाभाविक धर्म है अर्थात् इनसान की प्रकृति भी इस एक की गवाही अपने अन्दर और बाहर पा रही है। लेकिन बहुतों ने अपने स्वाभाविक दीन (धर्म) को नहीं पहचाना और बहुदेववाद (शिर्क) की घाटियों में भटक गए।

इनसानी प्रकृति की इसी महानता के आधार पर एकेश्वरवादी और बहुदेववादी की (क़ुरआन में) एक उपमा भी प्रस्तुत की गई है जिसका अभिप्राय यह है कि इनसान स्वभाव से ही तौहीद को पसन्द करता है न कि बहुदेववाद को—

> "अल्लाह मिसाल बयान करता है। एक व्यक्ति (दास) वह है जिसके बहुत-से झगड़नेवाले स्वामी साझी हैं, जो उसे अपनी-अपनी ओर खींचते हैं और एक दूसरा व्यक्ति (दास) जो पूर्ण एक ही व्यक्ति (स्वामी) का है। क्या इन दोनों की मिसाल एक-सी हो सकती है? कृतज्ञता अल्लाह के लिए है, मगर उनमें से अधिकतर नहीं जानते।" (क़ुरआन, 39 : 29)

अर्थात् बहुत-से विभिन्न स्वभाववाले और विभिन्न उद्देश्यवाले स्वामियों की ग़ुलामी को अपनी पसन्द से कौन सहन कर सकता है? तो जब कोई ग़ुलाम इस अपमान पर राज़ी नहीं होता तो फिर इनसान यह क्यों पसन्द करता है कि एक ख़ुदा के साथ अपने मन से दूसरे बहुत-से ख़ुदाओं को साझी बना लेता है? क्या एक स्वामी के ग़ुलाम और बहुत-से स्वामियों के ग़ुलाम का हाल एक जैसा होगा? स्पष्ट है कि ऐसा नहीं है। इसके बाद मानव-प्रकृति की स्वाभाविक पुकार को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है— "अलहम्दुलिल्लाह", अर्थात् प्रशंसा केवल अल्लाह ही के लिए है। कोई और उसके साथ साझी नहीं है।

इनसान की प्रकृति की इसी उच्चता को सम्बोधित करके प्रश्न किया गया है—

> "क्या अल्लाह अपने बन्दे के लिए पर्याप्त नहीं है?"
>
> (क़ुरआन, 39 : 36)

यही मानव-प्रकृति की उच्चता है जिसको इनसान शिर्क में लिप्त होते ही खो बैठता है और अचानक गौरव और आदर के उस आकाश से, जिस पर अल्लाह तआला ने उसको आसीन किया था, अत्यन्त अपमान की गहरी खाई में जा गिरता है —

> "और जो कोई अल्लाह के साथ साझी ठहराए तो मानो वह आकाश से गिर गया,

अब या तो उसे पक्षी उचक ले जाएँ या वायु उसको ऐसे स्थान पर ले जाकर फेंक दे जहाँ उसके चीथड़े उड़ जाएँ।" (कुरआन, 22 : 31)

दूसरे स्थान पर इससे अधिक स्पष्ट शब्दों में फ़रमाया —

"क्या नहीं देखते कि अल्लाह ही के लिए सजदा करते हैं जो आकाशों में हैं और जो धरती में हैं और सूरज और चाँद और सितारे और पहाड़ और वृक्ष और पशु और बहुतेरे इनसानों में से भी, और बहुत-से ऐसे हैं जिनपर अज़ाब (यातना) अनिवार्य हो चुका है और जिनको अल्लाह अपमानित कर दे तो उसको कोई आदर देनेवाला नहीं है। बेशक अल्लाह जो चाहता है करता है।"

(कुरआन, 22 : 18)

इस आयत में इनसान की जिस तुच्छता की ओर इशारा है वह यह है कि समस्त वस्तुएँ जो विश्व में हैं, एक अल्लाह को सजदा करती हैं और यद्यपि अल्लाह ने इन समस्त वस्तुओं को इनसान की सेवा करने और उसे लाभ पहुँचाने में सक्रिय कर रखा है, लेकिन इनमें से कोई वस्तु भी यह नीचता स्वीकार नहीं करती कि इनसान की बन्दगी करे, लेकिन इनसान है कि इन समस्त वस्तुओं की उपेक्षा श्रेष्ठ और उनसे सेवाकार्य लेने के बाद भी उनमें से बहुत-सी वस्तुओं का पुजारी बना हुआ है।

(घ) इनसान की निर्बलता और मुहताजी

चौथी चीज़ इनसान की निर्बलता और मुहताजी है। निर्बलता और मुहताजी इनसान का व्यक्तिगत गुण है जो उससे कभी भी अलग नहीं होता। निस्सन्देह इनसान शक्तियों और योग्याताओं का एक बहुत बड़ा भण्डार अपने अन्दर रखता है। वह अपनी इन शक्तियों के द्वारा धरती में गड़े ख़ज़ाने उगलवा लेता है, वातावरण पर अपनी सत्ता का सिंहासन बिछाता है, पहाड़ों की छाती चीर डालता है, समुन्द्रों पर अपने जहाज़ दौड़ाता है, लेकिन इन सबके बावजूद वह अपनी निर्बलता को जानता है। उसे मालूम है कि वह स्वयं कुछ नहीं है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप में देखता है कि जिन शक्तियों और योग्यताओं के द्वारा वह यह समस्त कार्य करता है उनमें से किसी योग्यता को भी वह अस्तित्व में नहीं लाया है। और न जिन चीज़ों का वह उपभोग करता है उनमें से किसी चीज़ को उसने पैदा किया है। ये समस्त वस्तुएँ किसी और ही की प्रदान की हुई हैं और उसी के बनाए हुए नैसर्गिक नियमों की पाबन्द भी हैं। इनसान के अधिकार में जो कुछ है वह बस इतना है कि कोशिश करके उनके नियमों को समझे और फिर उन नियमों

के अनुसार उनसे काम ले और लाभ उठाए। और यह लाभ भी बस एक विशेष अवधि तक के लिए है जिसके पूरा हो जाने के बाद वह लाख चाहे लेकिन उनमें से किसी वस्तु से एक क्षण के लिए भी कोई लाभ नहीं उठा सकता। यह बात इनसान को स्वभावतः एक अनदेखी हस्ती का आश्रय लेने पर विवश करती है, जिसने उसको (मनुष्य को) और उन समस्त वस्तुओं को अस्तित्व प्रदान किया है और जिसके जारी किए हुए नियमों के अनुसार यह कारख़ाना चल रहा है। इनसान की यही दुर्बलता और मुहताजी है जिसके कारण फ़रमाया गया है—

"तुम सब अल्लाह के सामने मुहताज हो।" (क़ुरआन, 35 : 15)

और दूसरे स्थान पर फ़रमाया है—

"अल्लाह निस्पृह (बेनियाज़) है और तुम मुहताज हो।"

(क़ुरआन, 47 : 38)

जो बुद्धिमान हैं वे जीवन की प्रत्येक अवस्था और उसके प्रत्येक परिवर्तन में अपनी मुहताजी को महसूस करते रहते हैं और कभी ख़ुदा से निस्पृह और बेपरवाह नहीं होते, बल्कि उनपर जितनी नेमतों की अधिकता बढ़ती जाती है, ख़ुदा से उनका सम्बन्ध उतना ही बढ़ता जाता है। इसका बेहतरीन उदाहरण हज़रत दाऊद (अलै०), हज़रत सुलैमान (अलै०), ज़ुलक़रनैन और फ़ारूक़े-आज़म हज़रत उमर (रज़ि०) हैं। लेकिन जो छोटे दिल के और मूर्ख होते हैं, वे प्रायः अपने चारों ओर धन-सम्पत्ति की अधिकता, नौकर-चाकरों की भीड़ और शक्ति व सामर्थ्य के चमत्कार को देखकर बेसुध हो जाते हैं और स्वयं को ईश्वरत्व में साझीदार समझने लगते हैं। क़ुरआन में इसके उदाहरण के लिए फ़िरऔन, हामान, क़ारून और अबू लहब इत्यादि के नाम पेश किए गए हैं जो वर्तमान समय में पथभ्रष्ट करनेवाले लोगों के नायक हैं और जो फ़िरऔन, हामान, क़ारून और अबूलहब के स्थानापन्न हैं।

जिन लोगों पर इस प्रकार की मदान्धता छा जाती है उनके लिए क़ुरआन ने जगह-जगह इनसान की प्राकृतिक निर्बलता एवं विवशता को विभिन्न मिसालों से स्पष्ट किया है कि इनसान कितना ही घमण्ड और ख़ुदा से बेपरवाही क्यों न बरते और उसके प्रति कितनी ही उपेक्षा की नीति क्यों न अपनाए, लेकिन उसके जीवन में अनेकों बार ऐसी परिस्थितियाँ पैदा होती हैं जो उसकी बेबसी और निर्बलता का रहस्य उजागर कर ही देती हैं और उस समय उसके मुख से वह चीख़ निकल ही पड़ती है जो उसकी प्रकृति की पुकार है। इस हालत में उसके ठहराए हुए समस्त साझीदार, चाहे वह स्वयं हो या उसके दल-बल या उसके अनदेखे साझीदार और

ख़ुदा के मुक़ाबले में बनाए हुए देवता सबके सब उसका साथ छोड़ देते हैं और केवल एक ही हस्ती बची रहती है जिसकी कृपा और दया उसे शरण देती है। यह तर्क क़ुरआन मजीद में विभिन्न शैलियों में बयान हुआ है। हम केवल कुछ उदाहरण देंगे। फ़रमाया—

> "कहो : कौन है जो थल और जल के अँधेरों से तुम्हें छुटकारा देता है, जिसे तुम गिड़गिड़ाते हुए और चुपके-चुपके पुकारने लगते हो कि यदि हमें इससे बचा लिया तो हम अवश्य कृतज्ञ हो जाएँगे? कहो, अल्लाह तुम्हें इनसे और हर एक बेचैनी से और पीड़ा से छुटकारा देता है; लेकिन फिर तुम उसका साझीदार ठहराने लगते हो।" (क़ुरआन, 6 : 63-64)

दूसरी जगह फ़रमाया है :

> "वह अल्लाह ही है जो तुमको भूमि और समुद्र में चलाता है यहाँ तक कि जब तुम नौकाओं में सवार होकर अनुकूल हवा और प्रसन्न और हर्षित यात्रा कर रहे होते हो, और फिर अचानक प्रचण्ड हवा का ज़ोर होता है और हर ओर से लहरों के थपेड़े लगते हैं और यात्री समझ लेते हैं कि तूफ़ान में घिर गए, उस समय सब अपने दीन-धर्म को अल्लाह ही के लिए ख़ालिस करके उससे दुआएँ माँगते हैं कि 'अगर तूने हमको इस संकट से बचा लिया तो हम कृतज्ञ दास बनेंगे।' मगर जब वह उनको बचा लेता है तो फिर क्या देखते हैं कि वही लोग धरती में विद्रोह करने लगते हैं।" (क़ुरआन, 10 : 22-23)

उद्दण्ड इनसान की उद्दण्डता और उसके अहंकार व घमण्ड की यह कितनी सच्ची मिसाल है। दुनिया के समुद्र में जब उसके जीवन की नौका बिना किसी रुकावट के चलती रहती है, वह अपनी नौका की मज़बूती और अपने सुप्रबन्ध पर गर्व करता रहता है, अपनी युक्ति और बुद्धि को बड़ी चीज़ समझता है, अपनी सामग्री और अपने संसाधनों पर इतराता है और ख़ुदा की अधीनता और कृतज्ञता से बाहर होकर बिना किसी अधिकार के अपनी ख़ुदाई का एलान करता है, घमण्ड से अकड़ता है, घमण्ड से इतराता है, अहंकार के नशे से मदमस्त हो जाता है। लेकिन जब अचानक अनुकूल हवा तूफ़ानी बन जाती है, नौका डाँवाँडोल होने लगती है और मौजों के थपेड़े नौका को एक घास या तिनका और उसके समस्त प्रबन्ध व युक्तियों को बेहक़ीक़त साबित कर देते हैं, उसके मुख से सहसा चीख़ निकल पड़ती है कि ऐ ख़ुदा! अगर इस संकट से तूने बचा लिया तो अब कभी तुझे न भूलूँगा, अब कभी घमण्ड न करूँगा और कभी तेरी ख़ुदाई में साझी बनने का दुस्साहस न करूँगा, बल्कि तेरा कृतज्ञ बन्दा बनूँगा और तेरी ही अधीनता स्वीकार करूँगा, मैं न अपनी बन्दगी करूँगा, न किसी और की। लेकिन जैसे ही

इस संकट से छुटकारा पाता है, फिर वही लापरवाही और मदान्धता उभर आती है और अपने जिस साज़ व सामान और जिस घमण्ड को इतना तुच्छ पाया था उन्हीं के नशे में चूर होकर फिर ख़ुदा का बाग़ी और मुशरिक बन जाता है। ऐसे लोगों को ख़ुदा ने धोखेबाज, इनकारी, प्रतिज्ञा भंग करनेवाला और कृतघ्न कहा है, क्योंकि प्रकृति के जिस अनुबन्ध को संकट के कोड़े आकर याद दिलाते हैं और इनसान दोबारा वचन देता है, परिस्थितियों के बदलते ही उस अनुबन्ध को तोड़कर फिर कृतघ्न बन जाता है।

इस विवरण से अभीष्ट यह दिखाना है कि इनसान के अन्दर दुर्बलता और मुहताजी का एहसास बिल्कुल स्वाभाविक है और यह मुहताजी उसे धकेलकर एक ऐसी हस्ती की ओर ले जाती है जो उसके लिए शरणदाता और आश्रय हो। अगर इनसान पर उसकी यह मुहताजी ज़ाहिर हो तो वह कभी अहंकार, अवज्ञा, घमण्ड, बग़ावत और अपनी बड़ाई के शिर्क में लिप्त न हो। लेकिन वह बहुधा ख़ुदा की नेमतें पाकर अपनी दुर्बलता और मुहताजी को भूल जाता है। लेकिन बस भूल जाता है, उसकी प्रकृति बदल नहीं जाती। अत: जैसे ही उसपर कोई मुसीबत ऐसी आती है जो उसके निश्चिन्तता के भ्रम के आधारों को हिलाकर रख देती है तो उसकी दबी हुई प्रकृति फिर जाग उठती है और वह ख़ुदा की ओर भागता है और उसके सिवा सबको भूल जाता है।

उद्दण्ड से उद्दण्ड इनसानों में हम इस प्रकृति को जागते और उभरते देखते हैं। घमण्डी से घमण्डी इनसान जो "हमें जो कुछ मिला है अपने ज्ञान-विज्ञान के बल पर मिला है" के घमण्ड में ख़ुदा को भूल गए थे, जिन्होंने बिना किसी अधिकार के ख़ुदा की धरती में अपनी ख़ुदाई के झण्डे गाड़ दिए थे, जिनको अपने उपायों और अपने प्रबन्धों की दृढ़ता पर इतना गर्व था कि ख़ुदा के नाम पर हँसते थे, आज हम देख रहे हैं कि उनके उपायों की असफलता और उनके स्थायित्व की लचरता ने उनपर इनसान की बेबसी और कमजोरी का रहस्य खोल दिया है और वे ख़ुदा का नाम लेने लगे हैं।

"कदाचित इसके बाद अल्लाह कोई नई दशा पैदा कर दे।"

(कुरआन, 65 : 1)

एकेश्वरवाद के विशिष्ट प्रमाण

सम्बोधित लोगों की मान्यताओं की दृष्टि से प्रमाण

ऊपर के दो अध्यायों में हमने ईश्वर और एकेश्वरवाद के वे प्रमाण दिए हैं जिनकी हैसियत सामान्य प्रमाणों की है। उनकी आधारशिला इस जगत् की मर्यादाएँ व नियमों और मानव-प्रकृति की प्रतीतियों सर्वमान्य सिद्धांतों पर है। इस कारण, यद्यपि इनके प्रथम सम्बोधित लोग अरब हैं, लेकिन उनके तर्क सम्पूर्ण मानवजाति के लिए समान रूप से प्रभावी हैं। इसमें अरब, ग़ैर-अरब, मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम का कोई भेद नहीं है। यह जगत् रूपी ग्रंथ हर व्यक्ति के सामने खुला हुआ है और प्रकृति की गवाहियाँ भी हर स्वस्थ हृदय के अन्दर से बोल रही हैं। केवल वही लोग इन हक़ीक़तों के इनकार का दुस्साहस कर सकते हैं जिन्होंने अपनी आँखें बन्द कर ली हों और अपने कान बहरे कर लिए हों और ऐसे लोगों को संसार की कोई चीज़ भी कुछ मनवा नहीं सकती।

अब हम उन प्रमाणों को स्पष्ट करेंगे, जिनका आधार विरोधी पक्ष के स्वीकृत सिद्धांतों पर स्थित है। उनकी हैसियत विशिष्ट प्रमाणों की है, अर्थात् विरोधी जिन सही सिद्धांतों को स्वीकार करता है, क़ुरआन ने उनको अपना लिया है और उनके आधार पर उनकी अपेक्षाओं और अनिवार्यताओं को स्पष्ट करके, सम्बोधित जन से उनको स्वीकार करने की माँग की है, और साथ ही जो बातें इन सर्वमान्य सिद्धांतों के विरुद्ध पड़ती हैं उनके निषेध करने की माँग की है। तर्क की यह शैली पूर्णतः बुद्धिसम्मत और स्वाभाविक है। इसपर यह आक्षेप करना कि इसमें तर्कों का आधार अप्रमाणित रह गया है बिल्कुल निरर्थक है। प्रमाणीकरण की यह रीति नहीं है कि उस आधार को भी प्रमाणित करने पर समय बरबाद किया जाए जिसे विपक्षी पहले से स्वीकार करता है। इन्हीं तर्कों के कारण हमारे कुछ दार्शनिकों व मीमांसकों को यह ग़लतफ़हमी हो गई कि क़ुरआन के समस्त प्रमाण प्रत्यारोपण प्रकार के हैं और ऐसे स्पष्ट प्रमाणों से क़ुरआन बिल्कुल ख़ाली है जो समस्त इनसानों पर समान रूप से लागू हो सकें। यह विचार क़ुरआन से अनभिज्ञता पर आधारित है। यह तो एक विशेष प्रकार का क़ुरआनी प्रमाणीकरण है जिसका आधार एक ओर सम्बोधित व्यक्तियों के स्वीकृत तथ्यों पर है और दूसरी ओर उन स्पष्ट प्रमाणों पर है जिनकी व्याख्या पूर्व के दो अध्यायों में की जा चुकी है।

अब हम उनके स्पष्टीकरण की कोशिश करेंगे।

(क) साझीदारों के लिए कोई प्रमाण नहीं है

इसके सम्बन्ध में क़ुरआन ने अरबवासियों को सबसे बड़ा तर्क यह दिया है कि जिनको तुम ख़ुदा का साझी ठहराते हो उनके लिए तुम्हारे पास कोई प्रमाण नहीं है। ख़ुदा के विषय में तर्क और प्रश्न तो विवाद से परे है। क्योंकि उसे तो तुम मानते ही हो और उसकी गवाही जगत् और मानव के अन्तःकरण से मिल रही है, लेकिन उसके सिवा जिनको तुमने ख़ुदाई में साझीदार बना रखा है। उनके लिए प्रमाण जुटाना तुम्हारा कर्तव्य है। बिना प्रमाण के किसी मामूली बात को भी मानना इनसानी स्वभाव के विरुद्ध है, जबकि इतनी बड़ी बात कि बिना प्रमाण के किसी को ख़ुदा का सहायक ठहराया जा रहा हो। अतः इसका अगर कोई बौद्धिक प्रमाण है तो उसे प्रस्तुत करो और अगर कोई लिखित प्रमाण है तो उसे पेश करो। रही यह बात कि तुमने अपने पूर्वजों को इनकी पूजा करते देखा है तो यह कोई प्रमाण नहीं है। इतने बड़े दावे के प्रमाण के लिए केवल यह बात पर्याप्त नहीं हो सकती —

"और जो अल्लाह के साथ किसी दूसरे माबूद को पुकारता है, जिसका उसके पास कोई प्रमाण नहीं है, तो उसका हिसाब उसके रब के पास है।"

(क़ुरआन, 23-117)

"तुम ख़ुदा के सिवा जिन्हें पूजते हो वे बस कुछ नाम हैं जो तुमने और तुम्हारे बाप-दादाओं ने ठहरा लिए हैं। ख़ुदा ने उनके लिए कोई प्रमाण नहीं उतारा है।"

(क़ुरआन, 12 : 40)

"क्या हमने कोई प्रमाण अवतरित किया है, जो गवाही दे रहा हो उन चीज़ों की जिनको वे ईश्वर का साझी ठहराते हैं?" (क़ुरआन, 12 : 40)

अरबवाले इसके जवाब में यह कहते थे कि हमारे पूर्वजों ने जो शिर्क (बहुदेववाद) को अपनाया वह ख़ुदा के हुक्म से अपनाया और यही हज़रत इबराहीम (अलै०) की शिक्षा है। क़ुरआन ने इसका जवाब दिया कि यह अल्लाह पर मिथ्यारोपण है। ख़ुदा ने कभी शिर्क का हुक्म नहीं दिया है। अगर तुम इस दावे में सच्चे हो तो इससे (क़ुरआन से) पहले की कोई किताब लाओ या कोई ऐसा प्रमाण पेश करो जो ज्ञान पर आधारित हो —

"कहो, ज़रा देखो तो उनको जिनको तुम ख़ुदा के सिवा पुकारते हो। मुझे दिखाओ क्या चीज़ है धरती की जो उन्होंने बनाई है, क्या चीज़ है जिसमें आकाशों में

उनका साझा है? मेरे पास इससे (अर्थात् क़ुरआन से) पहले की कोई किताब लाओ या कोई और ज्ञानमय प्रमाण, अगर तुम अपने दावे में सच्चे हो।"

(क़ुरआन, 46 : 4)

रही यह बात कि यह तुम्हारे बाप इबराहीम (अलै०) की शिक्षा है तो यह भी बिल्कुल झूठ और लांछन है। इबराहीम (अलै०) के जीवन का एक उत्कृष्ट कारनामा तो हिजरत (देश-त्याग) की घटना है कि उन्होंने एक अल्लाह के लिए अपने कुटुम्ब व स्वदेश सबको छोड़ दिया और हिजरत के समय उन समस्त चीज़ों से, जिन्हें लोगों ने ख़ुदा के अतिरिक्त अपना उपास्य एवं सिफ़ारिशी बना रखा था, से अपनी विरक्ति की जो उद्घोषणा जिन यादगार शब्दों में की और उसका उल्लेख आज तक उनकी नस्ल की एक शाखा बनी इसराईल में मौजूद है, जो उनके समस्त अनुगामियों के लिए सदा मार्ग-दर्शन का काम दे सकते हैं। क़ुरआन की सूरा-43 (ज़ुख़रुफ़) में इस तर्क और क़ुरआन के जवाब का पूरा विवरण मौजूद है—

"और कहते हैं, 'कि अगर करुणामय अल्लाह चाहता (कि हम उनकी पूजा न करें) तो हम कभी उनको न पूजते।' ये इस मामले की वास्तविकता को बिल्कुल ही नहीं जानते, केवल अटकल के तीर-तुक्के लड़ाते हैं। क्या हमने इससे पहले इनको कोई किताब दी है, जिसका प्रमाण ये अपने पास रखते हों? नहीं, बल्कि ये कहते हैं कि हमने अपने बाप-दादा को एक ढर्रे पर पाया है और हम उन्हीं के पद-चिह्नों पर चल रहे हैं। इसी तरह हमने तुमसे पहले जिस बस्ती में भी कोई डरानेवाला भेजा, उसके खाते-पीते लोगों ने यही कहा कि हमने अपने बाप-दादा को एक ढर्रे पर पाया है और हम उन्हीं के पद-चिह्नों पर चल रहे हैं। हर नबी ने उनसे पूछा, 'क्या तुम उसी डगर पर चलते जाओगे चाहे मैं तुम्हें उस मार्ग से अधिक ठीक मार्ग बताऊँ, जिस पर तुमने अपने बाप-दादा को पाया है?' उन्होंने सारे रसूलों को यही उत्तर दिया कि जिस धर्म की ओर बुलाने के लिए तुम भेजे गए हो हम उसका इनकार करते हैं। अतः हमने उनसे बदला लिया और देख लो कि झुठलानेवालों का क्या परिणाम हुआ? और याद रखो वह समय जब इबराहीम ने अपने बाप और अपनी जाति से कहा था कि 'तुम जिनकी बन्दगी करते हो, मेरा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं। मेरा सम्बन्ध केवल उससे है जिसने मुझे पैदा किया, वही मेरा मार्गदर्शन करेगा।' और इबराहीम यही शब्द अपने पीछे अपनी सन्तानों में छोड़ गया ताकि वे उसकी ओर पलटें।" (क़ुरआन, 43 : 20-28)

इन आयतों के अर्थ का विश्लेषण कीजिए तो मालूम होगा कि अरबवाले शिर्क के पक्ष में जो अनुश्रुतियाँ (रिवायतें) प्रस्तुत करते थे वे बिल्कुल निराधार और बेसिर-पैर की थीं। हज़रत इबराहीम (अलै०) के जीवन का संकलित वृतांत जिसको

एक ज्ञानमय प्रमाण की हैसियत दी जा सकती थी और जो बनी इसराईल के धर्मग्रन्थों में मौजूद था, अरबों की इन मनघड़त और काल्पनिक कहानियों के खण्डन के लिए बिल्कुल काफ़ी था। विशेष रूप से उनकी हिजरत की घटना तो एकेश्वरवाद और निष्ठा का एक यादगार कारनामा था। लेकिन कितने खेद की बात है कि इबराहीम (अलै०) की सन्तान की दोनों शाखाओं में से किसी ने भी इस अमर वाक्य की स्प्रिट को नहीं पहचाना। यहूदी इस मार्ग-चिहन् के उपरांत अनेकों बार भटके और अन्ततः तौहीद (एकेश्वरवाद) के सीधे मार्ग से वे इतने दूर हो गए कि उनके लिए इसकी ओर पलटना असम्भव हो गया और अल्लाह तआला ने उनको धिक्कार दिया और अरबों ने तो अपनी अनुश्रुतियों के भण्डार से सिरे से यह वृत्तांत ही गुम कर दिया और इसके बिल्कुल विपरीत ऐसी कथाएँ गढ़कर खड़ी कर दीं जिनसे मूर्तिपूजा का समर्थन हो।

अरबवासियों के इन अंध-विश्वासों के खण्डन में क़ुरआन ने जगह-जगह हज़रत इबराहीम (अलै०) की विभिन्न जीवन-घटनाओं का, तद्धिक काबा के निर्माण और इसके निर्माण के उद्देश्य के आरम्भिक इतिहास का और समस्त नबियों के संदेश के उभयनिष्ठ उद्धेश्य का हवाला दिया है कि इनमें से कोई चीज़ भी ऐसी नहीं है जिससे तुम्हारे इस दावे का समर्थन होता हो कि ख़ुदा ने शिर्क और मूर्तिपूजा का आदेश दिया है। अल्लाह के आदेशों के जानने का माध्यम नबी हैं और नबियों की शिक्षाएँ प्राचीन धर्मग्रन्थों में मौजूद हैं। उनमें से किसी की शिक्षा को भी तुम शिर्क (बहुदेववाद) के समर्थन में पेश नहीं कर सकते। नबियों के इतिहास की संकलित सामग्री क़ुरआन के दावे का समर्थन कर रही है और जहाँ कहीं इस इतिहास में कोई बात मिलाई गई है, उसका खण्डन स्वयं इसी के अन्दर मौजूद है।

(ख) अनिवार्यता के सिद्धांत द्वारा प्रमाणीकरण

क़ुरआन के विशिष्ट तर्कों का दूसरा पहलू यह है कि अरबवासी ख़ुदा के जिन गुणों को मानते थे, क़ुरआन ने उनसे उन गुणों की अनिवार्यताओं को भी मानने की माँग की। ये अनिवार्यताएँ दो प्रकार की हैं। एक वे गुण जो उन माने हुए गुणों से स्वतः प्रतिलक्षित होते हैं तथा उन गुणों का निषेध जिनसे माने हुए गुणों का निषेध हो जाता है। दूसरे वे अधिकार व कर्त्तव्य जो उन गुणों को मानने के परिणामस्वरूप अनिवार्य रूप में माननेवाले पर लागू होते हैं। इसी तरह उन कामों और अक़ीदों का इनकार जिनसे ख़ुदा के स्वीकृत अधिकारों का इनकार निषेध

होता है।

अरबवालों के सम्बन्ध में यह बात मालूम है कि वे न केवल ख़ुदा के अस्तित्व को स्वीकार करते थे, बल्कि आकाशों और धरती का स्रष्टा, पालनहार, शक्ति और योग्यताओं का प्रदान करनेवाला, मौत और ज़िन्दगी का मालिक और सम्पूर्ण संसार का प्रबन्धक ख़ुदा ही को मानते थे, लेकिन रब अर्थात् स्वामी और शासक ख़ुदा के अतिरिक्त औरों को भी स्वीकार करते थे। क़ुरआन ने उनसे माँग की कि जिसके लिए ये समस्त गुण मानते हो, अनिवार्य है कि रब भी उसी को मानो —

"इसलिए वही अल्लाह तुम्हारा वास्तविक रब भी है, फिर सत्य के पश्चात गुमराही के अतिरिक्त और क्या शेष रह गया। आख़िर तुम कहाँ भटके जाते हो।"

(क़ुरआन, 10 : 32)

अर्थात् ये सारी बातें मान लेने के बाद तो यह अनिवार्य है कि स्वामी, शासक, आदेशदाता और निषेधकर्त्ता उसी को मानो। इस सत्य के बाद, जो कि सिद्ध हो चुका, अगर किसी और को मानते हो, जिसका कोई प्रमाण नहीं है, तो यह गुमराही और पथभ्रष्टता है। अतः क़ुरआन की सूरा-7 (आराफ़) में फ़रमाया कि जिसको धरती व आकाश का स्रष्टा मानते हो अनिवार्य है कि उसी को रब भी मानो। उसके सिवा किसी और को स्वामी व शासक न बनाओ। जो स्रष्टा है, आदेश देने का अधिकार भी उसी को प्राप्त है —

"निस्सन्देह तुम्हारा स्वामी वह अल्लाह है जिसने आसमानों और ज़मीन को बनाया। सुन लो! उसी की सृष्टि है और आदेश देने का अधिकार भी उसी को प्राप्त है।" (क़ुरआन, 7 : 54)

जिस अल्लाह को आकाश व धरती का स्रष्टा मानते हो उसी को पालनहार और प्रभु भी मानो। यह नहीं हो सकता कि स्रष्टा कोई हो और प्रभु कोई और बन जाए। जिसने पैदा किया है आदेश देने का अधिकार भी उसी को प्राप्त है। जब एक टापू का खोजनेवाला और एक वस्तु का आविष्कारक मात्र इसलिए कि उसने उसे खोजा या उसका आविष्कार किया, अधिकार रखता है कि उसकी मिल्कीयत और उसके प्रयोग में हक़ उसे ही प्राप्त हो तो फिर ख़ुदा के इस हक़ से क्यों इनकार करते हो? जबकि उसका हक़ खोज और आविष्कार से बहुत अधिक है।

इसी तरह स्रष्टा के लिए सर्वज्ञ होना अनिवार्य ठहराया। अर्थात् जिस हस्ती को आसमान व ज़मीन का स्रष्टा मानते हो तो अनिवार्य है कि उसके ज्ञान को व्यापक मानो—

"क्या वह नहीं जानेगा जिसने सृष्टि की रचना की?" (क़ुरआन, 67 : 14)

इसी तरह यह अनिवार्य है कि जिस ख़ुदा को विश्व की सृष्टि और प्रबन्ध करने में सक्षम माना है तो सम्पूर्ण लाभ-हानि उसी के अधिकार में मानी जाए —

"और अगर तुमको अल्लाह कोई हानि पहुँचाए तो उसको कोई दूर नहीं कर सकता, सिवाए उसके। और अगर वह तुमको कोई भलाई पहुँचाए तो वह हर चीज़ की सामर्थ्य रखता है।" (क़ुरआन, 6 : 17)

इसी तरह विस्तार के साथ अल्लाह तआला को उन गुणों से मुक्त ठहराया गया जिनसे ख़ुदाई (ईश्वरत्व) का निषेध या जिनको मानने से उन गुणों का निषेध हो जाता है, जिनको अरबवासी ख़ुदा के लिए स्वीकार करते थे। यह बात बहुत विस्तार चाहती है और इस पर एक हद तक हम अपनी पुस्तक 'शिर्क की हक़ीक़त' में बहस कर चुके हैं। यहाँ केवल संकेत कर देना पर्याप्त समझते हैं।

इस सम्बन्ध में सैद्धांतिक बात यह फ़रमाई गई है कि अल्लाह तआला केवल अच्छे गुणों का ही धारक है, कोई बुरा गुण ईश्वर की कल्पना के विपरीत है। इस जगत् की पहेली हल ही उस समय होती है जब हम एक ऐसी हस्ती को मान लेते हैं, जो समस्त सद्गुणों, सौन्दर्य और पूर्णता से संपन्न हो। अगर उसके साथ कोई ऐसा गुण जोड़ दिया जाए जो सौन्दर्य और पूर्णता के विरुद्ध हो तो यह बूझी हुई पहेली फिर अनबूझी बनकर रह जाती है और इस जगत् पर वही अन्धकार फिर छा जाता है, जिसे ईश्वर की सही धारणा ने नष्ट कर दिया था—

"और अल्लाह के लिए अच्छे ही गुण हैं तो उन्हीं गुणों से उसे पुकारो और उन लोगों को छोड़ो जो उसके गुणों के सम्बन्ध में कुटिलता ग्रहण करते हैं। वे अपने किए का बदला पाएँगे।" (क़ुरआन, 7 : 180)

इस विषय में सबसे अधिक महत्व साझीदारों और सिफ़ारिशियों को दिया गया है। इस धारणा से ख़ुदा के समस्त आधारभूत गुणों का इनकार हो जाता है। क़ुरआन ने इनके इन अन्तर्विरोधों को बहुत विस्तार के साथ उल्लेख किया है। जैसे यह कि सिफ़ारिशियों को अल्लाह की निकटता प्राप्त करने का साधन बनाने से यह मानना पड़ता है कि ख़ुदा सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि अगर वह सर्वज्ञ है तो ये सिफ़ारिशी उसके ज्ञान में क्या अभिवृद्धि करेंगे? और अगर वह अपने ज्ञान के विरुद्ध केवल इनकी सिफ़ारिश के आधार पर लोगों के नेक या बद होने का फ़ैसला फ़रमाएगा तो इससे अनिवार्यतः उसकी न्याय और तत्वदर्शिता का निषेध हो जाता है। अगर ख़्याल यह है कि उसकी अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए केवल कर्म और आज्ञापालन काफ़ी नहीं है बल्कि किसी का वसीला (माध्यम) भी

आवश्यक है तो इससे हर बन्दे के साथ उसकी निकटता, उसकी सर्वव्यापी दयाशीलता और उसके क्षमा और उदार होने का इनकार होता है और यह एक निकृष्टतम भावना होगी जो एक बन्दा अपने पालनहार के विषय में रखेगा।

इसी तरह किसी को जगत् के प्रबन्ध में साझी ठहराना या तो ख़ुदा की पूर्ण सामर्थ्य का इनकार है या उसके पूर्ण स्वाभिमान का। क्योंकि किसी और की हिस्सेदारी वही ख़ुदा सहन कर सकता है जिसके लिए धरती व आकाश का संभालना कठिन हो, या फिर वह निर्लज्ज हो कि उसे अपने अधिकारों और सीमाओं में दूसरों के हस्तक्षेप से कोई लाज न आती हो और ख़ुदाई की धारणा इन समस्त बुराइयों और त्रुटियों से बिल्कुल पाक है। क़ुरआन ने जगह-जगह इन अन्तर्विरोधों की ओर ध्यानाकर्षित किया है और लोगों से माँग की है कि वे ईश्वर के लिए कोई ऐसा गुण न स्वीकार करें जो ईश्वर के उच्चतर भाव के लिए अनुचित हो या जिससे उन गुणों का निषेध होता हो जिनको वे स्वीकार कर चुके हैं।

क़ुरआन मजीद में ये प्रत्यारोपात्मक एवं निर्दोषात्मक पहलू बिल्कुल साथ-साथ स्पष्ट होते हैं और वर्णन-शैली सामान्य रूप से वाद-विवाद की न होकर एक स्वीकृत सत्य के वर्णन की होती है, क्योंकि एक बात को मानने के साथ उसकी अपेक्षाओं को मानना और उसकी विरोधी बातों का इनकार करना स्वयंसिद्ध अनिवार्य बात हो जाती है जिसकी उपेक्षा वही लोग कर सकते हैं जो हठधर्म हैं।

क़ुरआन की निम्नलिखित आयतों पर उपर्युक्त पहलू से ध्यान देना चाहिए—

> "और वे कहते हैं कि ख़ुदा के बेटे-बेटियाँ हैं। वह पाक है इन बातों से। वास्तविक तथ्य यह है कि धरती और आकाशों में जो कुछ भी है वह उनका स्वामी है, सबके सब उसी के आज्ञाकारी हैं, वह धरती और आकाशों का आविष्कारक (पैदा करनेवाला, बनानेवाला) है, और जब जिस बात का वह निर्णय करता है, उसके लिए बस वह आदेश देता है कि 'हो जा' और वह हो जाती है।"
>
> (क़ुरआन, 2 : 116–117)

यहाँ 'वह पाक है' शब्द एक तर्क के रूप में आया है। इसका अर्थ यह है कि ख़ुदा के लिए सन्तान की धारणा उसके ईश्वरत्व (ख़ुदाई) की धारणा के विरुद्ध है। ईश्वरत्व को अपेक्षित है कि वह हर तरह की आवश्यकता और हर प्रकार की समकक्षता और वंश-परंपरा से उच्च और पाक हो, वह जगत् का आविष्कारक हो, जगत् कुछ भी न था उसी ने उसे अस्तित्व प्रदान किया, और उसकी शक्ति व

सामर्थ्य की पूर्णता का यह हाल हो कि जब चाहे मात्र अपने आदेश से जिस चीज़ को चाहे अस्तित्व प्रदान कर दे। एक ऐसी ही हस्ती ख़ुदा हो सकती है और तुमको ख़ुदा के लिए इन गुणों से इनकार नहीं है, लेकिन इनके साथ तुम कुछ ऐसे गुण भी मान लेते हो जो इनके बिल्कुल प्रतिकूल हैं, जो न तो ईश्वरत्व के भाव के अनुरूप हैं और न तुम्हारे माने हुए गुणों के साथ कोई तालमेल रखते हैं।

दूसरी जगह फ़रमाया —

"कहते हैं कि अल्लाह की सन्तान है।—वह पाक है, वह निरपेक्ष है। उसी के अधिकार में है जो कुछ आकाशों में है और जो कुछ धरती में है।—नहीं है तुम्हारे पास इसकी कोई दलील (प्रमाण)।" (क़ुरआन, 10 : 68)

एक जगह मूर्तियों और बुतों की निर्बलता और असमर्थता की ओर इशारा करके फ़रमाया कि ईश्वरत्व की धारणा का यह घोर अपमान है कि ऐसे बेबस चीज़ों को ख़ुदा का सहायक ठहराया जाए जिसको सर्वशक्तिमान और ज़बरदस्त मानते हों। उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा की सबसे बड़ी गवाही यह जगत् है—

"ऐ लोगो! एक मिसाल दी जाती है, इसे ध्यान से सुनो। ख़ुदा के सिवा तुम जिनको पुकारते हो वे एक मक्खी भी नहीं बना सकते, चाहे सब इसके लिए एकत्रित हो जाएँ, बल्कि अगर मक्खी उनसे कोई चीज़ छीन ले जाए तो वे उससे वापस भी नहीं ले सकते। सहायता चाहनेवाले भी निर्बल और जिनसे सहायता चाही जाती है वे भी निर्बल। इन लोगों ने अल्लाह की वास्तविक शक्ति नहीं पहचानी। निस्संदेह अल्लाह शक्तिशाली और प्रभुत्ववाला है।"

(क़ुरआन, 22 : 73-74)

एक अर्थगर्भित मिसाल देखें जिसमें एकेश्वरवाद से संबंधित हर प्रकार के प्रमाण और तर्क एक ही क्रम में प्रस्तुत किए गए हैं चाहे वे तर्क प्रत्यारोण से संबंध रखते हों, चाहे उनका संबंध निर्दोषिता के गुण से हो, या चाहे वे प्रमाण बाह्य जगत् से संचित किए गए हों, या उनका संबंध अंतःकरण से हो—

"और जिन लोगों ने अल्लाह के सिवा दूसरे संरक्षक बना रखे हैं (और अपने इस कार्य का कारण यह बताते हैं कि) हम तो उनकी उपासना केवल इसलिए करते हैं कि हमें अल्लाह के समीप कर सकें। अल्लाह उनके बीच अवश्य ही फ़ैसला करेगा उसके बारे में जिसमें वे झगड़ रहे हैं। अल्लाह किसी ऐसे व्यक्ति को मार्ग नहीं दिखाता जो झूठा और नाशुक्रा (कृतघ्न) हो। अगर अल्लाह किसी को अपना बेटा बनाना चाहता तो अपनी सृष्टि में से किसी को चुन लेता, पाक है वह इससे (कि कोई उसका बेटा हो) वह तो एक ही अल्लाह है सब पर अधिकार रखनेवाला। उसने आकाशों और धरती को हक़ के साथ पैदा किया है। वही दिन

पर रात और रात पर दिन को लपेटता है। उसी ने सूर्य और चन्द्रमा को इस प्रकार वशीभूत कर रखा है कि प्रत्येक एक नियत समय के लिए चला जा रहा है। सुन लो! वह प्रभुत्वशाली और क्षमा करनेवाला है। उसी ने तुमको एक जीव से पैदा किया, फिर वही है जिसने उसकी जाति से उसका जोड़ा बनाया। और उसी ने तुम्हारे लिए चौपायों में आठ नर और मादा पैदा किए। वह तुम्हारी माताओं के पेटों में तीन-तीन अन्धकारमय पर्दों के भीतर तुम्हें एक के बाद एक रूप देता चला जाता है। वही अल्लाह (जिसके ये कार्य हैं) तुम्हारा रब है, उसी के लिए बादशाही है। नहीं है कोई पूज्य उसके अतिरिक्त, फिर तुम कहाँ भटके जा रहे हो? अगर तुम नाशुक्री (कृतघ्नता) करोगे तो अल्लाह तुमसे बेपरवाह है। लेकिन वह अपने बन्दों के लिए नाशुक्री को पसन्द नहीं करता और अगर तुम कृतज्ञता दिखाओ तो उसे वह तुम्हारे लिए पसन्द करता है। और कोई बोझ उठानेवाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा। अन्त में तुम सबको अपने रब की ओर पलटना है। फिर वह तुम्हें बता देगा कि तुम क्या करते रहे हो, वह तो दिलों तक का हाल जानता है। मनुष्य पर जब कोई विपत्ति आती है तो वह अपने रब की ओर पलटकर उसे पुकारता है, फिर जब उसका रब उसे अपनी नेमत प्रदान कर देता है तो वह उस मुसीबत को भूल जाता है जिसपर वह पहले पुकार रहा था। और दूसरों को अल्लाह का साझी ठहराता है ताकि उसकी राह से भटका दे। कह दो, थोड़े दिन अपने इनकार के बावजूद थोड़ा आनन्द ले ले। निश्चय ही तू नरक में जानेवाला है।" (क़ुरआन, 39 : 3-8)

जो व्यक्ति इन आयतों पर चिन्तन-मनन करेगा उसके सामने एक के बाद एक तौहीद के पक्ष में और शिर्क के निषेध में निम्नलिखित पहलू आएँगे—

(1) जो लोग किसी को ख़ुदा का साझी ठहराते हैं वे झूठे और नाशुक्रे हैं। उनके पास इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ख़ुदा ने किसी को अपना साझी बनाया है। अगर है तो उसको पेश करें। इस प्रमाण का विस्तृत विवरण अध्याय के आरम्भ में गुज़र चुका है।

(2) यह विचार कि ख़ुदा की बेटियाँ हैं, जो उसके यहाँ सिफ़ारिशी होंगी, बिल्कुल झूट है। ख़ुदा के लिए सन्तान की कल्पना ही सिरे से ग़लत है। ख़ुदा को वाहिद (एक, अकेला) और सर्वशक्तिमान और सबको वश में रखनेवाला होना चाहिए। वह हर तरह की मुहताजी से परे है, उसको बेटों और बेटियों की क्या ज़रूरत है। फिर सितम यह है कि अरबवाले ख़ुदा के लिए बेटियाँ मानते थे, जबकि ख़ुद बेटियों से अत्यन्त घृणा करते थे जिसका अर्थ यह है कि वे दोहरी ग़लती कर रहे थे। एक यह कि ख़ुदा के लिए सन्तान का होना स्वीकार कर रहे थे, दूसरे यह कि संतान में से भी ख़ुदा के हिस्से में वह सन्तान देते थे जिससे वे स्वयं घृणा करते

थे ।

(3) जगत् की सृष्टि व्यर्थ नहीं हुई है बल्कि एक उद्देश्य के साथ हुई है, जिसका अर्थ यह है कि बदले का एक दिन अवश्य आनेवाला है और पूर्ण न्याय का उदित होना निश्चित है । इस धारणा के साथ सिफ़ारिश की धारणा का कोई जोड़ नहीं, क्योंकि सिफ़ारिश की धारणा जगत् की उद्देश्यपूर्ण रचना का निषेध कर देती है । सिफ़ारिश, न्याय का इनकार है ।

(4) इसके बाद अनुकूलता पर आधारित प्रमाण और वशीभूत पर आधारित तर्क (जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है) से यह परिणाम निकला कि इस विश्व का स्रष्टा "अज़ीज़" और "ग़फ़्फ़ार" है । "अज़ीज़" अर्थात् सब पर प्रभुत्व रखनेवाला और सबकी पहुँच से ऊपर । कोई नहीं है जो उसकी आज्ञा के बिना उसके समक्ष एक शब्द भी बोल सके । "ग़फ़्फ़ार" अर्थात मुक्तिप्रदान करनेवाला और गुनाहों पर पर्दा डालनेवाला । इसलिए उसके यहाँ किसी सिफ़ारिशी की ज़रूरत नहीं है । आदमी का अपना कर्म स्वयं सिफ़ारिशी है ।

(5) इसके बाद सृजन और पालन-पोषण के प्रमाणों से अपनी ज्ञान-परिधि का तर्क दिया और फिर नतीजा निकाला कि जिसने पैदा किया, जिसने पालन-पोषण के साधन जुटाए, जो माताओं के गर्भों में परत दर परत पर्दों के पीछे अपनी कारीगरी के चमत्कार दिखाता है वही ख़ुदा इस योग्य है कि उसको रब मानो । उसी के हाथ में धरती और आकाश की बादशाही है । न उसका कोई साझी है और न कोई साझी होना चाहिए ।

(6) इसके बाद न्याय का यह क़ानून बयान करके सिफ़ारिश और शफ़ाअत की पूरी बुनियाद गिरा दी कि ख़ुदा अपने बन्दों की तरफ़ से न कुफ़्र को पसन्द कर सकता है न बंदों की तरफ़ से शुक्र को नापसंद करता है । तो जो व्यक्ति चाहे अल्लाह का शुक्रगुज़ार बन्दा बनकर उसकी प्रसन्नता और सामीप्य प्राप्त करे और जो चाहे नाशुक्री करके उसके क्रोध और प्रकोप में ग्रस्त हो । ये दोनों बातें आदमी के कर्म पर निर्भर करती हैं । कोई दूसरा न कृतज्ञता को कृतघ्नता बना सकता है, न कृतघ्न को कृतज्ञ —

"कोई बोझ उठानेवाला किसी का बोझ नहीं उठाएगा ।" (क़ुरआन, 6 : 164)

(7) इसके बाद अपने ज्ञान-विस्तार का वर्णन करके शफ़ाअत की ज़रूरत का खण्डन कर दिया कि वह दिलों के भेदों तक को जानता है, कोई दूसरा उसके ज्ञान में क्या वृद्धि करेगा ।

(8) अन्त में तौहीद का वह प्रमाण दिया है जिसे हम, मुख्य शीर्षक 'अंतर्जगत् के प्रमाण' के उपशीर्षक 'इनसान की निर्बलता और मुहताजी' के अन्तर्गत बयान कर चुके हैं।

इन समस्त सकारात्मक प्रमाणों और निषेधात्मक प्रमाणों के बाद ख़ुदा के स्वरूप की धारणा जिस रूप में दुनिया के सामने आती है, उसका एक सुन्दर उदाहरण क़ुरआन की यह आयत है जो आयतलकुर्सी कहलाती है —

"अल्लाह कि जिसके सिवा कोई पूज्य-प्रभु नहीं, वह जीवन्त-सत्ता है, और सम्पूर्ण जगत् को संभाले हुए है। वह न सोता है और न उसे ऊँघ लगती है। उसी के अधिकार में है जो कुछ आकाशों में है और जो कुछ ज़मीन में है। कौन है जो उसके सामने बिना उसकी अनुमति के सिफ़ारिश कर सके? जो कुछ लोगों के सामने है, उसे भी वह जानता है और जो कुछ उनसे ओझल है, उसे भी वह जानता है। वे उसके ज्ञान में से किसी चीज़ पर हावी नहीं हो सकते सिवाय उसके जिसका ज्ञान वह स्वयं उनको देना चाहे। उसका राज्य आकाशों और धरती पर छाया हुआ है और उनकी देख-रेख उसके लिए कोई थका देनेवाला कार्य नहीं है। बस वही एक महान और सर्वोपरि सत्ता है।" (क़ुरआन, 2 : 255)

दूसरी बहुत अच्छी और व्यापक मिसाल क़ुरआन की सूरा-59 (हश्र) में है और उसमें नकारात्मक की अपेक्षा सकारात्मक पहलू को प्रधानता दी गई है —

"वह अल्लाह ही है जिसके सिवा कोई पूज्य नहीं। छिपी और खुली हर चीज़ का जाननेवाला, वही सर्वोच्च करुणामय और दयावान है। वह अल्लाह ही है जिसके सिवा कोई पूज्य नहीं। वह सम्राट है अत्यन्त पवित्र, सर्वथा सलामती, निश्चिन्तता प्रदान करनेवाला, संरक्षक, प्रभावशाली, अपनी बड़ाई प्रकट करनेवाला। पाक है अल्लाह उस शिर्क से जो लोग कर रहे हैं। वह अल्लाह ही है जो सृष्टि-योजना का बनानेवाला, अस्तित्व प्रदान करनेवाला और उसके अनुसार रूप देनेवाला है। उसके लिए उत्तम नाम हैं। हर चीज़ जो आकाशों और धरती में है उसी की तसबीह कर रही है। और वह प्रभुत्वशाली और तत्वदर्शी है।" (क़ुरआन, 59 : 22-24)

इसी के अन्तर्गत सूरा-112 (इख़लास) को भी सामने रखना चाहिए —

"कहो, वह अल्लाह है, यकता (अद्वितीय)। अल्लाह निरपेक्ष और सब उसके मुहताज हैं। न उसकी कोई सन्तान है और न वह किसी की सन्तान है। और कोई उसका समकक्ष नहीं है।" (क़ुरआन, 12 : 1-4)

ख़ुदा की यह धारणा उन मान्यताओं पर आधारित है जो अरबों की मान्यताएँ थीं। क़ुरआन ने यह किया कि जिन गुणों को अरबवाले मानते थे, उनकी अक्षेपाओं को भी उसने उनके सामने रख दिया कि इनको भी स्वीकार करो। इसी तरह जिन बातों से उन मान्यताओं या उनकी अपेक्षाओं का निषेध होता था, उनसे

इस बात की माँग की गई कि वे उन बातों का इनकार कर दें।

इसी तरह इन गुणों को मानने से माननेवालों पर अल्लाह तआला के जो अधिकार सिद्ध होते थे उनको भी, बिना किसी और को उनमें साझी बनाए, मानने की माँग की।

क़ुरआन की सूरा-7 (आराफ़) में यह सिद्ध करने के बाद कि जिसने सृजन किया है अनिवार्यतः वही पूज्य-प्रभु है और आदेश देने और शासन का अधिकार उसी को प्राप्त है, यह नतीजा निकाला कि गुप्त और प्रत्यक्ष और आशा व निराशा हर हाल में उसी को पुकारना चाहिए। कठिनाइयों को आसान करनेवाला, आशंकाओं और संकटों को दूर करनेवाला और आशाओं को पूरा करनेवाला वही है, "अपने रब को पुकारो गिड़गिड़ाते हुए और चुपके-चुपके।" (क़ुरआन 7 : 55) "और उसी को पुकारो डरते हुए और आशा रखते हुए।" (क़ुरआन 7 : 56) सूरा-2 (बक़रा) में फ़रमाया कि जिसको पैदा करनेवाला मानते हो, उसी की बन्दगी और आज्ञापालन भी करो, दूसरों को इस बन्दगी और आज्ञापालन में सम्मलित न करो :

> "ऐ लोगो! अपने उस रब की बन्दगी करो जिसने तुमको पैदा किया है।"
>
> (क़ुरआन, 2 : 21)

इस बन्दगी के लिए जगह-जगह शर्त यह लगाई कि विशुद्ध आज्ञापालन के साथ उसकी बन्दगी करो अर्थात् यह वैध नहीं है कि इबादत ख़ुदा की हो और आज्ञापालन किसी और का —

> "नहीं है कोई पूज्य किन्तु वह, अतः उसी को पुकारो उसी के लिए आज्ञापालन को निश्चित करते हुए।" (क़ुरआन, 40 :65)

इसी तरह फ़रमाया जिस रब के लिए धरती व आकाश की बादशाही सिद्ध है, प्रशंसा उसी की होनी चाहिए और कृतज्ञता उसी की दिखानी चाहिए है—

> "उसी के लिए बादशाही है और उसी के लिए प्रशंसा है।"
>
> (क़ुरआन, 64 : 1)

सूरा-2 (बक़रा) ही में ख़ुदा को वास्तविक दाता सिद्ध करने के बाद फ़रमाया कि वास्तविक प्रेम का केन्द्र वही है "और जो लोग ईमान लाए वे अल्लाह से अत्यन्त उच्च कोटि का प्रेम करते हैं।" फिर इसी सम्बन्ध में फ़रमाया कि जब सब कुछ ख़ुदा ही की बख़शिश से मिला है तो केवल ख़ुदा ही को उनके वैध या अवैध ठहराने का अधिकार प्राप्त है। यह मानना कि ईश्वर के अतिरिक्त

दूसरों को भी उन्हें वैध व अवैध घोषित करने का अधिकार प्राप्त है, शिर्क है। इसी प्रकार यह भी शिर्क है कि व्यक्ति अपने तौर पर चीज़ों को वैध व अवैध ठहराने लगे। (देखिए कुरआन, सूरा-2, आयतें 168-169)

सूरा-16 (नह्ल) आयतें 48-59 में आकाश व धरती में एक ही ख़ुदा का अधिकार सिद्ध करने के बाद इसका अनिवार्य परिणाम यह बताया कि "अत: मुझ ही से डरो" और अल्लाह के अतिरिक्त दूसरों से डरने पर आश्चर्य प्रकट किया—"क्या अल्लाह के अतिरिक्त दूसरों से डरते हो।"

सूरा-6 (अनआम) में फ़रमाया कि जो आकाश व धरती का स्रष्टा है, अनिवार्य है कि उसी को हिमायती और सहायक बनाया जाए और स्वयं को पूरी तरह उसी के समर्पित कर दिया ज़ाए—

> "कहो, क्या मैं अल्लाह के सिवा, जो आकाशों व धरती का पैदा करनेवाला है, किसी और को अपना सहायक बनाऊँ, जबकि वह खिलाता है, खाता नहीं। कहो, मुझे तो हुक्म मिला है कि मैं सर्वप्रथम स्वयं को अल्लाह के प्रति समर्पित करनेवाला बनूँ।" (कुरआन, 6 : 14)

सूरा-10 (यूनुस) में अल्लाह तआला को मार्गदर्शक सिद्ध करने के बाद फ़रमाया कि वही इस बात का हक़दार है कि उसका अनुसरण किया जाए—

> "इनसे पूछो तुम्हारे ठहराए साझीदारों में कोई ऐसा भी है जो सत्य की ओर मार्गदर्शन करता है? कहो, वह अल्लाह है जो सत्य की ओर मार्गदर्शन करता है। फिर भला बताओ, जो सत्य की ओर मार्गदर्शन करता है वह इसका अधिक हक़ रखता है कि उसका अनुसरण किया जाए या वह जो स्वयं मार्ग नहीं पाता है जब तक कि उसको मार्ग न दिखाया जाए? आख़िर तुम्हें हो क्या गया है, कैसे उल्टे-उल्टे फ़ैसले करते हो?" (कुरआन, 10 :35)

सूरा-1 (फ़ातिहा) में जगत्-पालक ही का हक़ यह बताया कि कृतज्ञता उसी के आगे प्रकट की जाए बन्दगी उसी की की जाए, सहायता उसी से माँगी जाए—

> "हम तेरी ही इबादत करते हैं और तुझ ही से मदद चाहते हैं।"
>
> (कुरआन, 1 : 4)

सारांश यह कि जो व्यक्ति ख़ुदा को एक मानता है उसके लिए अनिवार्य है कि वह ख़ुदा के अधिकारों में किसी प्रकार से दूसरे को साझी ठहराकर उसके गुणों का इनकार और उसके अधिकारों को रद्द न करे। उदाहरणत: जो व्यक्ति ख़ुदा को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष का ज्ञाता मानता है, वह किसी और को सिफ़ारिशी मानकर उसके ज्ञान का निषेध न करे। जो व्यक्ति ख़ुदा को रहमान

व रहीम मानता है वह शफ़ाअत की आस्था रखकर ख़ुदा के न्याय के प्रति कुधारण न रखे।[1] जो ख़ुदा को बादशाह मानता है, वह उसकी बादशाही में किसी दूसरे का हुक्म न माने। जो ख़ुदा को निर्लिप्त और पाक मानता है वह पवित्रता को उसके पास पहुँचने का साधन बनाए, न कि साझियों और समकक्षों को। जो व्यक्ति ख़ुदा को सलाम अर्थात् सर्वथा सलामती और चैन स्वीकार करता है, वह सुख और परितोष उसी से माँगे। जो उसको शान्ति देनेवाला मानता है वह उसी की शरण में जाए। जो उसको विश्वासपात्र कहता है, वह उसी पर भरोसा करे और उसी से मदद माँगे। जो उसको प्रभुत्वशाली और उच्चासीन मानता है, वह उसके आगे सबको समान रूप से बेबस और नतमस्तक माने। जो उसको स्वाभिमानी मानता है, अनिवार्य है कि वह किसी अन्य के सामने सजदा करके उसके स्वाभिमान और बड़ाई को उत्तेजित न करे। जो ख़ुदा ही को स्रष्टा, अस्तित्व प्रदान करनेवाला और आकृति देनेवाला मानता है, अनिवार्य है कि उसके ज्ञान को सर्वव्यापी और उसकी शक्ति को परिपूर्ण स्वीकार करे।

(ग) न्याय पर आधारित प्रमाण

तौहीद (एकेश्वरवाद) के अन्तःकरण के प्रमाणों के क्रम में हम साबित कर चुके हैं, कि न्याय मानव की प्रकृति है और यह न्याय मानव को एक ख़ुदा की कृतज्ञता और उसकी बन्दगी पर विवश करता है। न्याय के इस विवेक को क़ुरआन ने "अह्दे-फ़ितरत' अर्थात् स्वाभाविक प्रण की संज्ञा दी है और प्रत्येक

1. जिस शफ़ाअत का अक़ीदा मुशरिक अपने बनाए हुए सिफ़ारिशियों के सम्बन्ध में रखते थे और जिससे ख़ुदा के गुणों में साझीदारी और उसके ज्ञान के अतिरिक्त न्याय का निषेध भी हो जाता है, जो शिर्क और कुफ़्र है। कदापि उचित नहीं है कि इस तरह की सिफ़ारिश का अक़ीदा फ़रिश्तों और नबियों व सदाचारियों के सम्बन्ध में रखा जाए। क़ुरआन मजीद में इस बात को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया है कि ख़ुदा के यहाँ किसी की न चलेगी। सब उसके सामने बेबस और सिर झुकाए खड़े होंगे और कोई व्यक्ति ख़ुदा की अनुमति के बिना उसके हुज़ूर में ज़बान न खोल सकेगा तथा एक शब्द भी हक़ के विरुद्ध न कह सकेगा और कोई सिफ़ारिश ऐसी न होगी जिससे सत्य, असत्य और असत्य, सत्य बन जाए। अतः नबियों, सदाचारियों और फ़रिश्तों की जो सिफ़ारिश साबित है वह इस मुशरिकाना सिफ़ारिश से बिल्कुल भिन्न है।

मनुष्य को इसका उत्तरदायी बनाया है। वहाँ यह प्रमाण सामान्य प्रमाण के रूप में बयान हुआ है और उसमें अरबवाले ही नहीं समस्त मानवजाति सम्मलित हैं। क़ुरआन ने इसी सिद्धांत से कुछ विशेष प्रमाण भी उद्धृत किए हैं जिनका समर्थन मानव-प्रकृति और अरब-मान्यताओं दोनों से होता है। उदाहरणस्वरूप अरबवाले सम्पूर्ण जगत् का स्रष्टा और दाता ख़ुदा ही को मानते थे, लेकिन प्रभु-पालनहार और अधिपति दूसरों को भी बना लेते थे और फिर उनका पद इतना बढ़ाते कि उनको ख़ुदा के बराबर ले जाकर बिठा देते, बल्कि ख़ुदा से भी अधिक बढ़ा देते थे। क़ुरआन ने उनकी इस मान्यता और मानव-प्रकृति की न्याय-प्रियता के आधार पर उनसे यह प्रश्न किया कि जब तुम अपने लिए पसंद नहीं करते कि अपने ग़ुलामों और दासों को पद और आजीविका में अपने बराबर का साझीदार ठहराओ तो फिर जिनको ख़ुदा की सृष्टि और शासित मानते हो, उनको ख़ुदा के अधिकारों और ख़ुदा के स्वत्वों में क्यों शरीक करते हो? तुम्हारी प्रकृति जिस बात को अपने लिए पसन्द नहीं करती, उसी चीज़ को प्रतापवान अल्लाह तआला के लिए किस तरह स्वीकार कर लेती है। जबकि ख़ुदा के प्रति तो यह सबसे अधिक अप्रिय होना चाहिए था। इस सिद्धांत को सामने रखकर निम्नलिखित आयतों पर ग़ौर करना चाहिए। इनमें यह तर्क विभिन्न तरीक़ों से उल्लिखित हुआ है—

"और अल्लाह ने तुममें से कुछ को कुछ पर रोज़ी में बड़ाई दी है तो वे जिनको बड़ाई प्रदान की गई अपनी रोज़ी अपने ग़ुलामों को नहीं दे देते कि आपस में बराबर हो जाएँ। क्या वे अल्लाह के अनुग्रह का इनकार करते हैं? और अल्लाह ने तुम्हारे लिए तुम्हारी जाति से पत्नियाँ बनाईं और तुम्हारी पत्नियों से तुम्हारे लिए बेटे और पोते पैदा किए और तुमको पवित्र चीज़ों की रोज़ी दी तो फिर क्या ये लोग बातिल (असत्य) पर ईमान लाते हैं? और अल्लाह के अनुग्रह का उन्हें इनकार है। अल्लाह को छोड़कर ऐसी चीज़ों की बन्दगी करते हैं जो उनके लिए आसमान व ज़मीन से कण बराबर भी न रोज़ी पर अधिकार रखती हैं और न अधिकार प्राप्त कर सकती हैं। अतः अल्लाह के लिए मिसालें न घड़ो। अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते। अल्लाह मिसाल बयान करता है, एक ग़ुलाम की— जो किसी चीज़ पर अधिकार नहीं रखता; और दूसरा उस (स्वतंत्र) व्यक्ति की जिसको हमने अच्छी रोज़ी दे रखी है और वह उसमें से खुले और छिपे ख़र्च करता है। बताओ, क्या वे दोनों बराबर होंगे? कृतज्ञता है अल्लाह के लिए बल्कि उनमें से प्रायः लोग नहीं जानते। अल्लाह एक और मिसाल बयान करता है दो आदमी की । एक गूँगा है, जो किसी चीज़ की सामर्थ्य नहीं रखता और वह अपने

स्वामी पर एक बोझ है, जहाँ उसको भेजता है कोई काम ठिकाने का करके नहीं देता। दूसरा आदमी वह है जो न्याय का आदेश देता है और वह ख़ुद सीधे मार्ग पर है। बताओ, क्या ये दोनों समान होंगे?" (क़ुरआन, 16 : 71-76)

तर्क का यही आधार सूरा-53, (नज़्म) की इस आयत में पाया जाता है —

"क्या तुम्हारे लिए लड़के हैं और अल्लाह के लिए लड़कियाँ? तब तो यह बहुत बेढंगा और अन्यायपूर्ण बँटवारा है।" (क़ुरआन, 53 :21-22)

(घ) अहले-किताब और मुनाफ़िक़

यहूदी और ईसाई (अहले-किताब) और मुनाफ़िक कपटाचारी जैसा कि हम "शिर्क की हक़ीक़त" में बयान कर चुके हैं, ये लोग साधारणतया या तो ख़ुदा के गुणों की सही धारणा से वंचित थे या इस सिलसिले में परस्पर प्रतिकूल बातें मानते थे या उन गुणों की अपेक्षाओं को स्वीकार करने की अपेक्षा करते थे। इस वजह से उन सामान्य तर्कों के बदले उन्हें विशिष्ट तर्कों के द्वारा संबोधित किया गया है। उनके सामने उनकी मान्यताएँ रख दी गई हैं और उनसे मुतालबा किया गया है कि जो बातें उन मान्यताओं के विपरीत हैं उन्हें छोड़ दें, और जो बातें उन्हें अपेक्षित हैं उनको स्वीकार करें। उनके सामने तौहीद की हक़ीक़त (एकेश्वरवाद की वास्तविकता) जिस तरह पेश की गई है उसका विस्तृत उल्लेख हम "उपर्युक्त पुस्तक" में बयान कर चुके हैं। यहाँ उसकी पुनरावृति की ज़रूरत नहीं है। केवल तर्क के आकार-प्रकार और उसके आधार को स्पष्ट करने के लिए कुछ बातों की ओर संकेत कर देना काफ़ी समझते है।

अहले-किताब के यहाँ यह चीज़ सर्वमान्य थी कि ख़ुदा के सिवा कोई रब नहीं है। क़ुरआन ने उनसे मुतालबा किया कि अगर तुम यह बात मानते हो तो ईसा (अलै०) और साधु-सन्तों को रब न बनाओ। साथ ही यह बात भी स्पष्ट कर दी गई कि किसी के लिए आदेश व निषेध का सम्पूर्ण अधिकार स्वीकार कर लेना वास्तव में उसको रब (ईश्वर) बना लेना है, मुख से उसको रब कहो या न कहो। इसी तरह यहूदियों को अपने बारे में यह गुमान और दावा था कि वे अल्लाह के प्रिय और चहेते हैं और बन्दगी से कुछ उच्च स्थान रखते हैं। क़ुरआन ने उनके उस इतिहास से, जिसे वे मानते थे, उनपर साबित कर दिया कि उनकी यह धारणा ग़लत है। उनका इतिहास गवाह है कि जब कभी उन्होंने ख़ुदा की बन्दगी और उसके आज्ञापालन से बाहर क़दम निकाला है ख़ुदा ने उनको शिक्षाप्रद दण्ड दिए हैं, जो इस बात का अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण है कि से कुछ ऊँचा दर्जा उन्हें प्राप्त हो

ऐसा नहीं है तथा हज़रत इबराहीम (अलै०) का पूरा क़िस्सा उनको सुनाकर उनपर यह हक़ीक़त स्पष्ट की गई है कि उनको ख़ुदा के यहाँ जो सामीप्य एवं स्थान प्राप्त हुआ वह बन्दगी और आज्ञाकारिता का फल था। फिर उन्हीं की सन्तान को ख़ुदाई का पद कैसे प्राप्त हो जाएगा?

इसी तरह ईसाइयों ने हज़रत ईसा (अलै०) की चमत्कारिक पैदाइश को उनके ईश्वरत्व के प्रमाण में पेश किया तो क़ुरआन ने उनकी सर्वमान्य धारणाओं से उनके विरुद्ध प्रमाण दिए कि तुम आदम (अलै०) और यह्या (अलै०) के जन्म को भी चमत्कारिक मानते हो, लेकिन उनके ख़ुदा होने का दावा नहीं करते हो तथा ईसा (अलै०) और उनकी माता का भोजन करना भी उनके मानव होने के सुबूत में पेश किया, क्योंकि भोजन करना भी यहूदियों और ईसाइयों के अनुसार मानव होने का एक सर्वमान्य प्रमाण था और इसी प्रमाण से हज़रत ईसा (अलै०) ने अपने बारे में अपने शिष्यों की एक ग़लतफ़हमी दूर की थी जिसका विस्तृत वर्णन पुस्तक "शिर्क की हक़ीक़त" में किया जा चुका है और ईसा (अलै०) के कुछ कथनों का जो ग़लत भाव ले लिया गया था, क़ुरआन ने उसका सुधार किया। उदाहरणार्थ ईसा (अलै०) के मुख से इंजीलों में बार-बार यह उद्धृत होता है, "मेरा पिता और तुम्हारा पिता" क़ुरआन ने इसका अर्थ "रब्बी व रब्बुकुम" अर्थात् "मेरा रब और तुम्हारा रब" बताया है और यह अभिप्राय इबरानी भाषा में पाई जानेवाली इंजीलों के बिल्कुल मुताबिक़ है।

मुनाफ़िक़ों (पाखण्डियों व कपटाचारियों) की सम्पूर्ण गुमराही उन अपेक्षाओं और अधिकारों के समझने में थी जो ख़ुदा और उसके गुणों पर ईमान लाने से बन्दों पर अनिवार्य हो जाते हैं और इस गुमराही का कारण यह नहीं था कि इन अपेक्षाओं को समझने में कोई अड़चन थी। ये सब बातें बिल्कुल स्पष्ट थीं और अगर इनमें कोई अड़चन थी भी तो वह क़ुरआन के बार-बार स्पष्ट करने से दूर हो गई थी। लेकिन मुनाफ़िक़ों का रोग बौद्धिक नहीं, बल्कि उसका संबंध हृदय से था। उनके अन्दर इतनी हिम्मत नहीं थी कि वे तौहीद की अपेक्षाओं का साथ दे सकते, इसलिए अगर एक रास्ते से ख़ुदा के धर्म में प्रवेश करते थे तो दूसरे रास्तों से भाग खड़े होने के लिए तैयार रहते थे। उनकी इस कमज़ोरी को दूर करने के लिए क़ुरआन ने एक ओर तो अल्लाह की सामर्थ्य के उन चमत्कारों का वर्णन किया जो मुसलमानों की अल्पसंख्या और कमज़ोरी के बावजूद उनकी विजय और सफलता के रूप में ज़ाहिर हुए और दूसरी ओर तौहीद (एकेश्वरवाद) के समस्त पहलुओं का भरपूर स्पष्टीकरण किया। अतः क़ुरआन की लगभग उन तमाम सूरतों (अध्यायों) में जिनमें मुनाफ़िक़ों को संबोधित किया गया है, यह दिखाया

गया है कि इस जगत् की समस्त चीज़ें एकमात्र अल्लाह के समक्ष नतमस्तक और उसकी प्रशंसा में लगी हुई हैं ताकि ख़ुदा की प्रशंसा व गुणगान में सम्पूर्ण जगत् की एकात्मता को देखकर उनके दिलों में साहस जागे और इस विचार से उनकी हिम्मतें जवाब न दे दें कि इस मार्ग पर चलनेवाले थोड़े हैं। बल्कि यह देखकर उनका साहस बढ़े कि थोड़े-से नाशुक्रे इनसानों के सिवा सम्पूर्ण जगत् इस मार्ग में उनके साथ है और यात्रियों व क़ाफ़िलों से भरी हुई सड़क यही है जो देखने में सुनसान नज़र आ रही है। क़ुरआन में जो लोग मुसब्बिहात[1] की आत्मा को समझ गए हैं उनको हमारे संकेतों के समझने में कोई कठिनाई न होगी।

1. 'मुसब्बिहात' से हमारा तात्पर्य क़ुरआन की वे सूरतें हैं जो "सब्बह" और "युसब्बिहु" शब्द से आरम्भ होती हैं। इन सूरतों में सामान्यतः उन मुनाफ़िक़ों को सम्बोधित किया गया है, जिन्होंने ज़बान से पूरी तौहीद का समर्थन कर दिया था, लेकिन उसकी ज़िम्मेदारियों को निभाने में कायरता का सुबूत दे रहे थे और मक्का के मुशरिकों और यहूदियों की जत्थेबन्दियों से भयभीत थे कि सम्भव है उनकी संगठित शक्ति के सामने मुसलमानों को उनकी अल्पसंख्या होने के कारण पराजित होना पड़े तो अपने हित में यही ठीक है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से भी सम्बन्ध बनाकर रखा जाए और यहूदियों व ईसाइयों से भी नाता न तोड़ा जाए। उन मुनाफ़िक़ों के सामने क़ुरआन ने बार-बार यह हक़ीक़त स्पष्ट की कि आकाश और धरती की समस्त चीज़ों का ख़ुदा का गुणगान करना, वास्तव में उनका दण्डवत और ख़ुदा के समक्ष साष्टांग प्रणति है जिसका अर्थ यह हुआ कि जगत् की समस्त चीज़ें ख़ुदा के बनाए हुए क़ानून के अधीन और उसकी आज्ञाकारी हैं और उसकी आज्ञा का बाल बराबर उल्लंघन नहीं कर रही हैं और अपने कर्म व व्यवहार से सारी सृष्टि को दावत दे रही हैं कि सब उसी के आज्ञापालन में लगी रहें, तथा किसी को भी यह विचार नहीं करना चाहिए कि अल्लाह के आज्ञाकारियों की संख्या थोड़ी है, बल्कि वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है। अर्थात् सम्पूर्ण जगत् ख़ुदा का आज्ञाकारी और अनुपालक है। उसकी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले अगर हैं तो बस इनसानों में से हैं। तो जो व्यक्ति ख़ुदा के मार्ग में क़दम रखे वह यह विचार न करे कि वह अकेला है, बल्कि उसे यह विचार करना चाहिए कि थोड़े-से गंदे इनसानों को छोड़कर, जिन्होंने अपनी इच्छाओं को या दूसरों को पूज्य बना रखा है, शेष आसमान से लेकर ज़मीन तक एक-एक कण उसका साथ दे रहा है।

पिछले प्रकरणों का सारांश

पिछले तीन अध्यायों में जो बातें बताई गई हैं हम उनका सारांश भी पेश कर देते हैं ताकि ये फैली हुई बातें सरलता से पाठकों की पकड़ में आ जाएँ —

(1) इस विस्तृत विवरण से पहली बात यह सिद्ध हुई कि जो लोग कहते हैं कि "क़ुरआन के तर्कों की सारी इमारत प्रत्यारोपणात्मक और अभिभाषणात्मक तर्कों पर क़ायम है और वह ठोस बौद्धिक और स्वाभाविक तर्कों से बिल्कुल खाली है" वे क़ुरआन के बारे में अत्यंत बुरे प्रकार की कुधारणा में ग्रस्त हैं। निस्सन्देह क़ुरआन मजीद में प्रत्यारोपणात्मक तर्क हैं लेकिन यह क़ुरआनी तर्कों का एक विशिष्ट प्रकार है और उसका संबोधन उन समूहों से है जो कुछ सही सिद्धांतों को मानते हैं। क़ुरआन ने उनके उन सर्वमान्य सिद्धान्तों के द्वारा उनके समक्ष अपने तर्क रखे हैं और यह तर्क का एक बिल्कुल स्वाभाविक और बुद्धिसंगत तरीक़ा है जो समस्त मानव-जाति में समान रूप से सर्वमान्य है। शेष क़ुरआन के सामान्य तर्कों का आधार प्रकृति और जगत् की उन निशानियों पर है जो अरबी व ग़ैर अरबी और ज्ञानी व साधारण व्यक्ति सबके लिए समान रूप से प्रमाण बनती हैं और यही कारण है कि क़ुरआन सम्पूर्ण मानव-जाति की हिदायत के लिए अवतरित हुआ और अब क़ियामत तक संसार की हिदायत और पथप्रदर्शन के लिए पर्याप्त है।

(2) दूसरी हक़ीक़त यह सिद्ध हुई कि क़ुरआनी तर्क हमारे मीमांसकों व दार्शनिकों के तर्कों से सर्वथा भिन्न हैं। उनके समस्त प्रयासों का सारांश ज़्यादा से ज़्यादा केवल एक कार्य-कारण को सिद्ध करना है जिससे न तो इस जगत् की पहेली की गुत्थी सुलझती है और न ही वह रिक्तता भरती है जिसको प्रत्येक इनसान अपने अन्दर महसूस करता है और जिसको भरने की उसके अन्दर इतनी तीव्र इच्छा है कि बहुधा अगर वह सही चीज़ नहीं पाता तो किसी ग़लत ही चीज़ से भरने की कोशिश करता है। इसके विपरीत क़ुरआनी तर्कों से एक ऐसे ख़ुदा का प्रमाण मिलता है जो समस्त अच्छे गुणों से विभूषित है, जिसने अपने इरादे से दुनिया को पैदा किया है और पूरी सूझ-बूझ व दया के साथ दुनिया का प्रबन्ध व पालन-पोषण कर रहा है। ऐसा नहीं है कि जिस प्रकार सूरज के चाहे बिना स्वतः उससे सृष्ट-जीव को लाभ पहुँच रहा है। उसी तरह ख़ुदा के चाहे बिना उससे दुनिया अस्तित्व में आ गई और ख़ुदा स्वतः बिन चाहे लाभान्वित हो रही है। और

यह भी नहीं है कि ख़ुदा दुनिया का सृजन करके उसके दैनिक मामलों से असम्बद्ध हो गया हो, यहाँ तक कि यदि वह लुप्त हो जाए तो उसके लुप्त हो जाने से दुनिया को कोई हानि न पहुँचे, जैसा कि यूनानी दार्शनिकों का विचार था। बल्कि वह सम्पूर्ण सृष्टि के प्रबन्ध व व्यवस्था को अपने नियंत्रण में लिए हुए है। वह अंश और पूर्ण दोनों को समान रूप से जानता है। धरती के भीतर जो कुछ प्रवेश करता है और आकाश से जो कुछ उतरता है वह सबको जानता है। समस्त भलाई व बुराई उसके हाथ में है। प्रकाश और अन्धकार दोनों को पैदा करनेवाला वही है। उसकी अनुमति के बिना न एक कण अपने स्थान से हट सकता है, न एक पत्ता अपनी शाखा से गिर सकता है। फिर वह यकता है और सर्वरक्षक है। जब कुछ नहीं था तब वह था और जब कुछ न होगा तब भी वह होगा। वह स्रष्टा है, रचयिता है, रूप देनेवाला है, दाता है, सर्वज्ञ और समर्थ है, कृपालु व दयालु है, सर्वशक्तिमान और तत्वदर्शी है, प्रभावी और प्रबल है, शान्तिदाता और रक्षक है, पापों को क्षमा करने और छिपानेवाला है, अत्यन्त पवित्र और सलामती है, बादशाह और रब है, मोक्षदाता और मित्र है, मार्गदर्शक और उदार है, वह सबसे बेपरवाह और सर्वाधार है, न किसी का बाप है न किसी का बेटा है और न कोई उसकी ज़ात-बिरादरी का है।

(3) तीसरी बात यह मालूम हुई कि ख़ुदा के इन गुणों से सम्बन्धित कुछ अपेक्षाएँ भी हैं और जिस तरह वह अपने गुणों में यकता है और उसका कोई साझीदार नहीं उसी तरह इन अपेक्षाओं में भी उसका कोई शरीक (साझी) नहीं है। उदाहरणार्थ यह कि जब वह स्रष्टा है तो उसी को प्रभु-पूज्य माना जाए, उसी के आदेशों का पालन किया जाए, जीवन के हर क्षेत्र में उसी का आज्ञापालन और बन्दगी हो। जब वही दाता है तो वास्तविक कृतज्ञता और सच्चे प्रेम का केन्द्र वही है और समस्त कृतज्ञताएँ और समस्त प्रेम उसकी कृतज्ञता और प्रेम के अंतर्गत हो। जब वह शान्तिदाता और रक्षक है तो उसी पर भरोसा किया जाए, उसी से सहायता माँगी जाए और उसी से याचना की जाए। जब वह सर्वशक्तिमान और तत्वदर्शी है तो वास्तव में भरोसे के लायक़ वही है और अनिवार्य है कि सुख-दुख, रंज व राहत हर हाल में उसी पर भरोसा किया जाए। जब वह सर्वज्ञ व समर्थ है तो सब खुले और छिपे को उसपर प्रत्यक्ष माना जाए। जब वह पथप्रदर्शक है तो आवश्यक है कि उसी के मार्गदर्शन का अनुसरण किया जाए तथा यह भी आवश्यक हुआ कि उन समस्त बातों से मौखिक और व्यावहारिक रूप में बचा जाए, जिनसे इन अपेक्षाओं का निषेध होता हो, या उनमें दूसरों की

हिस्सेदारी सिद्ध होती हो।

रहा यह प्रश्न कि ख़ुदा की मरज़ी और जीवन के हर विभाग के लिए उसके आदेश को जानने का साधन क्या है जिससे कि इनसान उसकी तौहीद का पूरा हक़ अदा कर सके और अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की आज्ञाकारिता से बच सके? तो हम अत्यन्त संक्षेप में यह बताएंगे कि ख़ुदा ने यह समस्त जानकारी देने के लिए इंसानों में से ही नेक लोगों को नियुक्त किया जिन्हें रसूल, नबी, पैग़म्बर, ईशदूत और सन्देष्टा आदि कहा जाता है। यहाँ इस विषय पर अधिक विस्तार का अवसर नहीं है। यहां तक हमने जो बहस की है उसका सार केवल इतना है कि सम्पूर्ण जगत और इनसान की प्रकृति की स्पष्ट गवाही यह है कि इस जगत् का एक स्रष्टा और प्रबन्धक है, जो समस्त सद्गुणों से विभूषित है और इस सम्पूर्ण जगत् का शासक और संचालक है। वही हमारा मित्र व कार्यसाधक और रब है जिसकी इबादत और आज्ञापालन हमारे लिए अनिवार्य है। वही हमारी समस्त कृतज्ञताओं, समस्त भक्ति और समस्त प्रार्थनाओं का केन्द्र है—

"कोई पूज्य प्रभु नहीं, किन्तु वह और कोई पालनहार नहीं सिवाय उसके।"

एकेश्वरवाद के प्रभाव व्यक्ति और समाज पर

पिछले अध्यायों में तौहीद (एकेश्वरवाद) की जो हक़ीक़त पेश की गई है उससे यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो गई है कि तौहीद का संबंध केवल ज्ञान से नहीं है बल्कि उसका आत्यांतिक संबंध कर्म और व्यवहार से है। मानव-जीवन पर, चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामाजिक इसके अत्यन्त गहरे प्रभाव पड़ते हैं। इनमें से कुछ प्रभावों की ओर हम यहाँ इशारा करेंगे।

व्यक्तिगत जीवन पर इसका सबसे अधिक स्पष्ट प्रभाव यह पड़ता है कि यही अक़ीदा (धारणा) इनसान को स्वतंत्रता और स्वाधीनता का वह उच्च स्थान प्रदान करता है जिसका वह, प्रभु का सर्वश्रेष्ठ सृजन होने के कारण, पात्र भी है। सम्पूर्ण जगत् इनसान के लिए पैदा हुआ है। लेकिन जब तक इनसान, एकेश्वरवाद से परिचित नहीं होता उस समय तक उसकी हीनता और गिरावट का हाल यह होता है कि वह संसार की तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं से डरता और काँपता है। जो वस्तुएँ उसकी अधीनता और उसके आज्ञापालन के लिए पैदा हुई हैं वह ख़ुद उनकी अधीनता स्वीकार करता और उनका आज्ञापालन करता है। अपने ही जैसे इनसान को अपना रब और स्वामी बनाता है, दासों की तरह उनके आगे झुकता है, उनको अन्नदाता, ख़ुदावंद नेमत, दीनदयालु आदि उपाधियों से सम्बोधित करता है। उन्हें हर तरह के सकारात्मक और निषेधात्मक आदेश देने का अधिकारी मानता है, यहाँ तक कि जीवित व्यक्तियों से गुज़रकर मुर्दों की क़ब्रों पर भी अपनी प्रार्थनाएँ और निवेदन पेश करता है, उनको जगत् की व्यवस्था का संचालक, सर्वज्ञ और लाभ-हानि पहुँचाने का स्वामी समझता है। अन्ततः हर चिकने पत्थर और हर ऊँचे वृक्ष को पूज्य बना लेता है। और हर घनी झाड़ी, हर सुनसान स्थान, हर, बहती नदी, हर ऊँचा पहाड़ और हर वह चीज़ जिससे उसे नुक़सान या लाभ पहुँच जाता है उसको बन्दगी के लिए पुकारती है और वह उनमें से किसी के सामने भी झुककर अपने स्वाभिमान की बलि दे देने में कोई संकोच नहीं करता। वह एक बार अपने प्रतिष्ठित पद से गिरकर बराबर गिरता ही चला जाता है और उस प्रतिष्ठा को बिल्कुल खो देता है, जिससे अल्लाह तआला ने उसे आभूषित किया था। यही हक़ीक़त है जो सूरा हज की इस आयत में बयान हुई है—

"और जो व्यक्ति ईश्वर के साथ साझी ठहराता है तो मानो वह आकाश से गिर

गया, अब या तो उसको पक्षी उचक ले जाए या वायु उसको उड़ा ले जाए दूरवर्ती स्थान पर।" (क़ुरआन, 22 : 31)

जिन चीज़ों को अल्लाह तआला ने इनसान की सेवा में लगाया वे उसकी सेवक होने के बावजूद यह अपमान सहन नहीं करतीं कि इनसान को सजदा करें। उनका सजदा अल्लाह तआला ही के लिए होता है। लेकिन इनसान की अधमता का यह हाल है कि इन सबका अभीष्ट एक होने के बावजूद इनमें से हरेक के द्वार पर माथा टेकने का चिह्न उसकी ललाट पर अंकित है—

"क्या तुम देखते नहीं कि अल्लाह ही को सजदा करते हैं वे सब जो आकाशों में हैं और जो धरती में हैं, सूरज और चन्द्रमा और तारे और पहाड़ और वृक्ष और पशु और बहुत-से मनुष्यों में से भी, और बहुत-से वे लोग भी हैं जो अज़ाब (यातना) के भागीदार हो चुके हैं। और जिसे अल्लाह अपमानित कर दे उसे फिर कोई प्रतिष्ठित करनेवाला नहीं है, अल्लाह करता है जो कुछ चाहता है।"

(क़ुरआन, 22 : 18)

लेकिन तौहीद का आलोक पाते ही अचानक उसकी हालत में ऐसी महान क्रान्ति घटित होती है कि वही इनसान जिसको हमने इस हाल में देखा था कि वह इस दुनिया की हर चीज़ से नीचे था, इतना ऊँचा हो जाता है कि ख़ुदा के सिवा हर चीज़ उससे नीचे आ जाती है। इस परिवर्तन का सर्वोत्तम उदाहरण हमें हज़रत मूसा (अलै०) और उनसे मुक़ाबला करनेवाले जादूगरों के वृत्तांत में मिलता है। जिन जादूगरों को फ़िरऔन ने इकट्ठा किया था, घड़ी भर पहले उनकी गिरी हुई प्रकृति का यह हाल था कि मुक़ाबले के मैदान में उतरने से पहले अपनी मज़दूरी की ओर से सन्तुष्ट हो जाना चाहते हैं और अत्यन्त अपमानपूर्ण चापलूसी के भाव में विनती करते हैं, "सरकार ! अगर हम विजयी रहे तो मज़दूरी भरपूर मिलेगी ना !" लेकिन अधिक देर नहीं होती कि तौहीद की एक झलक पड़ते ही उनकी प्रकृति में ऐसा महान परिवर्तन होता है कि फ़िरऔन उनको ईमान लाने पर कठोर से कठोरतम दण्ड की धमकी देता है और कहता है कि मैं तुम्हारे हाथ-पैर काटकर तुमको सूली पर लटका दूँगा। लेकिन उनपर इस धमकी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वे बेधड़क जवाब देते हैं कि कुछ परवाह नहीं, हम अपने रब के पास ही जाएँगे, तुम्हें जो कुछ करना है कर लो। तुम्हारा ज़ोर बस इसी दुनिया के जीवन पर चल सकता है—

"तू जिस बात का हमसे बदला लेना चाहता है वह इसके सिवा कुछ नहीं कि हमारे प्रभु की निशानियाँ जब हमारे सामने आ गईं तो हमने उन्हें मान लिया। हे प्रभु ! हमपर धैर्य उण्डेल दे और हमें संसार से उठा तो इस हालत में कि हम तेरे आज्ञाकारी हों।" (क़ुरआन, 7 : 126)

इसका कारण यह है कि एक एकेश्वरवादी पर यह रहस्य खुल जाता है कि दुख हो या सुख, जीवन हो या मृत्यु, हर एक के आने और जाने का रास्ता एक ही है। अतः आशा व निराशा हर हाल में एक ही से आशा रखता और उसी से डरता है। वह जानता है कि यह दुनिया विभिन्न देवताओं और संचालकों की संघर्ष भूमि नहीं है। एक ही प्रभुत्वशाली और तत्वदर्शी है जो अपनी शक्ति और तत्वदर्शिता से इस कारखाने को चला रहा है और सम्भव नहीं है कि उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ इस दुनिया के मामलात में कोई कण बराबर भी दख़ल दे सके। वह यह भी जानता है कि इस संसार का स्रष्टा सत्य और सत्य-प्रिय है, इस कारण इस संसार में निरपेक्ष असत्य का अस्तित्व नहीं है। असत्य की हैसियत इस संसार में परजीवी की है जो सत्य के साथ लग जाता है और अप्रत्यक्ष रूप में वह भी सत्य ही की सेवा सकता है। जिसने यह रहस्य जान लिया उसने दुनिया-जहान की दौलत पा ली। उसका कोष अक्षय और उसका जीवन अमर है। वह न तो कभी भयभीत होता है और न कभी उसको तन्हाई कष्ट देती है। वह एक सदाबहार वृक्ष से खाता है और सदा प्रवाहित स्रोत से तृप्त होता है —

> "क्या तुम देखते नहीं हो कि अल्लाह ने अच्छी मिसाल का दृष्टान्त किस चीज़ से दिया है? उसकी मिसाल ऐसी है जैसे एक अच्छी जाति का वृक्ष जिसकी जड़ भूमि में गहरी जमी हुई है और शाखाएँ आकाश में फैली हुई हैं, हर समय वह अपने प्रभु की अनुमति से अपने फल दे रहा है। ये मिसालें अल्लाह इसलिए देता है कि लोग इससे शिक्षा प्राप्त करें।" (कुरआन, 14 : 24, 25)

यही लोग हैं जिनकी बुद्धि सुख और दुख हर हाल में सन्तुलित रहती है और तंगी व संपन्नता की कोई हालत उनके हार्दिक संतुष्टि को विकंपित नहीं करती। वे न घबराते हैं, न निराश होते हैं, न वे अकड़ते हैं, न गर्व से फूलते हैं। जिस हँसी-ख़ुशी से वे आनन्द की घड़ियों का स्वागत करते हैं उसी प्रसन्नता के साथ आज़माइशों और संकटों का भी स्वागत करते हैं—

> "ऐ शान्त एवं सन्तुष्ट आत्मा, लौट अपने प्रभु की ओर इस तरह कि तू उससे राज़ी और वह तुझसे राज़ी।" (कुरआन, 89 : 27-28)

यह एक एकेश्वरवादी का अन्तःकरण है। वह अपने अन्तर में पूरी तरह एकाग्रचित हो जाता है और फिर यही एकाग्रचितता उसके बाह्य से प्रकट होने लगती है। वह जिस प्रकार भौतिक नियमों के आगे विवश और अधिकारहीन होता है वही विवशता और अधिकारहीनता वह अल्लाह तआला के आदेशों के आगे भी अंगीकार कर लेता है। अल्लाह ने जो स्वतंत्रता उसे प्रदान की है अपनी

ख़ुशी से वह उसे अल्लाह की मरज़ी के अधीन कर देता है। सूरज और चाँद, बादल और हवा, नदी और पहाड़ ख़ुदा के आज्ञापालन पर विवश हैं। ये नकेल में बंधी ऊँटनियों की तरह अपने निश्चित रास्तों पर चलते हैं, लेकिन मोमिन इनसान ख़ुद अपने हाथों से अपनी नाकों में नकेल डालकर इस क़ाफ़िले में शामिल हो जाता है, और यही इनसान की वास्तविक श्रेष्ठता है। यही स्वेच्छापूर्वक धारण की हुई आज्ञाकारिता तौहीद की असली रूह है और वह इस आज्ञापालन में जितना पूर्ण है उतना ही तौहीद में पूर्ण है। तौहीद के मार्ग का पहला दर्जा यह है कि इनसान अपने नफ़्स (मन) की बन्दगी से छूटकर अपने आपको अल्लाह की बन्दगी में देता है। दूसरा दर्जा यह है कि जाति, देश और वतन और समस्त रीति-रिवाजों और बंधनों से स्वतंत्र होकर ख़ुदा की तरफ़ भागता है। अन्तिम दर्जा यह है कि ख़ुशी-ख़ुशी इस जीवन पर अल्लाह की निकटता और उसकी संगति को प्राथमिकता देता है—

> "मेरी नमाज़, और मेरी क़ुरबानी और, मेरा जीना और मेरा मरना सब कुछ अल्लाह के लिए है जो सारे संसार का रब है। जिसका कोई साझीदार नहीं। तो मुझे इसी का आदेश मिला है और सबसे पहला आज्ञाकारी होनेवाला मैं हूँ।"
>
> (क़ुरआन,6 : 162, 163)

इसी प्रकार तौहीद (एकेश्वरवाद) का सामूहिक प्रभाव भी बहुत गहरा है। इनसानी समाज की आधारशिला पूर्ण न्याय और सच्ची समानता पर स्थित है और पूर्ण न्याय और सच्ची समानता ख़ुदा के एकत्व और इनसान के एकत्व के बिना असम्भव है। दुनिया के वर्तमान बिगाड़ और विनाश का वास्तविक कारण यह है कि जिस गति से दुनिया के विज्ञान ने उन्नति की है उस गति से उसके सामाजिक विवेक ने उन्नति नहीं की है। विज्ञान की उन्नति का तो यह हाल है कि इनसानों ने समस्त भौगोलिक सीमाएँ तोड़ डालीं और अपने आविष्कारों और मशीनों के बल पर इस विस्तृत धरती को एक मकान के आँगन के समान बना दिया। लेकिन दिलों और दिमाग़ों की संकीर्णता का यह हाल है कि प्रत्येक जाति का ख़ुदा भी अलग और हर एक अपना आदम (आदि-पुरुष) भी अलग बनाए हुए है। अगर इस प्रकार के इनसान किसी तरह अपनी सीमाओं को तोड़कर एक-दूसरे की सीमाओं में घुस जाएँ तो उनमें उसी प्रकार का नरसंहार और विनाश संभावित है जिसे हम आज दुनिया की विभिन्न जातियों में देख रहे हैं। उनकी शक्ल-सूरतें इनसान जैसी हैं, लेकिन उनके दिल हिंसक पशुओं के हैं। उनको प्रकृति ने नदियों,

पहाड़ों और जंगलों की सीमाओं द्वारा अलग-अलग कर रखा था, लेकिन विज्ञान ने ये सीमाएँ तोड़ दीं। इसका नतीजा यह हुआ है कि वे एक-दूसरे पर हिंसक पशुओं की तरह टूट पड़े हैं और सम्पूर्ण संसार की शान्ति भंग हो गई है। जो लोग इन कठिनाइयों पर विचार कर रहे हैं वे इस नतीजे तक पहुँच गए हैं कि जिन सिद्धांतों पर हमारे वर्तमान समाज और संस्कृति की इमारत क़ायम है, वे सिद्धांत अब वर्तमान समाज के लिए अपर्याप्त हैं। यह बचपन की लंगोटी पूरे आकार के इनसान के लिए अत्यंत तंग है। अब ज़रूरत है कि उसके आकार के अनुसार उसके लिए नया वस्त्र बनाया जाए। नस्ल और रंग, वतन और धरती के आधार पर जिन संस्कृतियों की उठान हुई थी और जो राजनीतिक संस्थाएँ अस्तित्व में आई थीं उनके अंत का समय आ गया। अब दुनिया को एक नवीन व्यवस्था (New Order) की तलाश है। लेकिन यह नवीन व्यवस्था (New Order) क्या हो ? इस प्रश्न का कोई उत्तर अब तक नहीं दिया जा सका। कुछ कहते हैं कि अब दुनिया को राष्ट्रीय और देशी राज्यों के स्थान पर एक विश्वव्यापी राज्य (World State) की ज़रूरत है जिसका आधार विश्वव्यापी मानवता की धारणा पर हो। लेकिन वे यह नहीं बताते कि यह विश्वव्यापी मानवता की शुभ धारणा अस्तित्व में कैसे आए, जबकि राष्ट्रों में बिखराव का यह हाल है कि न ख़ुदा उनका एक है और न आदम (आदि पुरुष) ? हर राष्ट्र का दावा यह है कि बस मैं हूँ और कोई नहीं। प्रत्येक का ख़ुदा अलग है, उसकी नस्ल अलग है, उसका आदि पुरुष अलग है। वह अपनी सभ्यता में, अपनी आस्थाओं में, अपनी नैतिकता में बिल्कुल भिन्न है और इस विलगाव को न केवल शेष रखना चाहता है, बल्कि उसे दूसरों पर बलपूर्वक थोपना भी चाहता है। स्पष्ट है कि जब तक दिमाग़ों में यह गाँठ मौजूद है तब तक उन राष्ट्रों में एकता के लिए कोई सर्वमान्य आधार मौजूद नहीं है। सर्वमान्य आधार केवल एक ही हो सकता है कि एक ही ख़ुदा को सब अपना ख़ुदा मानें, उसी के उतारे हुए क़ानून को सब अपने लिए जीवन-विधान बनाएँ और एक ही आदम के उभयनिष्ठ घराने का सब अपने आपको सदस्य समझें। इस आधार पर निस्सन्देह एक विश्वव्यापी राष्ट्रीयता और एक विश्वव्यापी राजनीतिक व्यवस्था क़ायम हो सकती है और संसार के विद्यमान संकटों का अंत हो सकता है। इसके सिवा जितने उपाय भी इस मुश्किल को हल करने के लिए अपनाए जाएँगे, वे रिश्तों में एक और गाँठ बढ़ा देंगे और किसी मुश्किल को हल नहीं करेंगे।

यही रहस्य है कि क़ुरआन[1] ने इनसानी समाज की बुनियाद दो चीज़ों पर रखी है, धर्म और ख़ानदान। फिर धर्म की नींव तौहीद (एकेश्वरवाद) पर रखी, अर्थात् केवल अल्लाह को रब और क़ानून देनेवाला माना जाए, दूसरों के लिए इसमें किसी प्रकार की साझेदारी न हो और ख़ानदान का आधार आदम के एकत्व की धारणा को बनाया, अर्थात् समस्त इनसानी नस्लें एक ही आदम से हैं, किसी को किसी पर श्रेष्ठता प्राप्त नहीं है। और अगर प्राप्त है तो दीन और ईश-भय के कारण। पहली चीज़ ने ख़ुदाओं और पूज्यों की अनेकता से मुक्ति दिलाई और नियम-निर्माण तथा शासनाधिकार के दावेदारों के पारस्परिक क्लेशों से दुनिया को बचाया और दूसरी चीज़ आदम के एकत्व ने ख़ानदान और नस्ल और गोत्र के समस्त गर्व को तोड़ दिया। सारे इनसान एक ख़ुदा के बन्दे और एक आदम के बेटे बन गए। काले और गोरे, अरबी और अजमी में कोई अन्तर न रहा। सबके लिए एक ही क़ानून और एक ही व्यवस्था है। सबके लिए एक समान शान्ति-सुरक्षा है, एक समान न्याय है, एक समान रूप से सबके लिए कार्य-क्षेत्र है, एक समान अधिकार है और एक समान ज़िम्मेदारी है। यहाँ किसी नस्ल के सम्बन्ध में यह अवधारणा निश्चित कर लेना कि वह जन्मजात दास है, एक महा पाप है। यहाँ आर्य और सामी नस्ल के बीच किसी प्रकार का भेदभाव रखना धरती में बिगाड़ पैदा करना है। यहाँ रेड-इण्डियन को मात्र रंग के आधार पर अधिकारों से वंचित करना घोर अत्याचार है। इस व्यवस्था में केवल वे लोग समानता के अधिकार से वंचित हैं जो इन सिद्धान्तों का इनकार करते हैं। इसका कारण यह है कि ये लोग यह नहीं चाहते कि मानवता शांति और न्याय से लाभान्वित हो सके, वे धरती पर बिगाड़ चाहते हैं और इनसानी समाज के उन आधारों को ढा देना चाहते हैं, जिनसे वंचित होकर दुनिया कभी चैन नहीं प्राप्त कर सकती।

आज जो लोग दुनिया के लिए नई व्यवस्था की तलाश में परेशान हैं वे जब तक तौहीद की हक़ीक़त को न समझ लें वे कोई ऐसी बुनियाद क़ायम नहीं कर सकते जिसपर समस्त मानव-जगत् के भाईचारे की इमारत क़ायम हो सके। इनसान के लिए यह बात तो बिलकुल स्वाभाविक है कि वह ख़ुदा की बन्दगी और आज्ञापालन करे। यह बात ऐसी है जिसकी दावत समस्त मानव-जाति को

1. देखें : सूरा-4 (निसा) का आरंभिक भाग

समान रूप से दी जा सकती है। और हर स्वस्थ प्रकृति का व्यक्ति, चाहे वह किसी भी जाति व नस्ल से सम्बन्ध रखता हो बिना किसी पक्षपात के इस आमंत्रण को स्वीकार कर सकता है। उसके अन्दर मानवीय प्रकृति के लिए एक नैसर्गिक आकर्षण है। बाह्य और अन्तर दोनों में इसके अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं। शेष इसके अतिरिक्त जितने भी दावे हैं सब अज्ञान के दावे हैं। मानव-प्रकृति के अन्दर उनके लिए न तो कोई अपील है और न जगत् की व्यवस्था से उनका कोई सामंजस्य है। अगर उनमें से किसी भी धारणा को बलपूर्वक दुनिया पर थोपने की कोशिश की गई तो अनिवार्यतः दुनिया स्वभावतः उसको उगलने की कोशिश करेगी और इसका परिणाम या तो यह होगा कि कोशिश असफल होगी, या सफल होगी तो उसकी हैसियत गले की फाँस की होगी और धरती के असत्य धर्मों में एक और असत्य धर्म की वृद्धि हो जाएगी।

धर्म में एकेश्वरवाद का महत्व

पिछली वार्ताओं को जिन पाठकों ने ध्यान से पढ़ा है उनसे यह हक़ीक़त छिपी नहीं रही है कि धर्म की व्यवस्था में तौहीद को वही स्थान प्राप्त है जो इनसान के शरीर में हृदय को प्राप्त है। अगर हृदय बीमार है तो सारा शरीर बीमार है और अगर हृदय स्वस्थ है तो सारा शरीर स्वस्थ है। यही रहस्य है कि तौहीद (एकेश्वरवाद) के बिना आदमी का कोई कर्म स्वीकार्य नहीं है और तौहीद के साथ प्रत्येक भूल के क्षमा किए जाने की आशा है। अतः क़ुरआन में है कि अल्लाह तआला शिर्क (बहुदेववाद) को क्षमा नहीं करेगा और इसके सिवा जो कुछ है, जिसके लिए चाहेगा क्षमा कर देगा।

तौहीद के इस महत्व का कारण यह है कि सारे धर्म की इमारत तीन चीज़ों पर क़ायम है—तौहीद, रिसालत और आख़िरत (एकेश्वरवाद, ईशदूतत्व और परलोकवाद)। इसका अर्थ यह है कि तौहीद सारे धर्म का एक तिहाई भाग है। यही कारण है कि क़ुरआन की सूरा इख़लास को, जो विशुद्धतः तौहीद की सूरा है, तिहाई क़ुरआन कहा गया है, लेकिन अगर और अधिक विचार कीजिए तो मालूम होगा कि रिसालत और आख़िरत भी तौहीद के अन्तर्गत आते हैं। रिसालत का तौहीद का अंश होना इस तरह सिद्ध है कि ख़ुदा ही को धर्म-विधान का प्रदाता एवं क़ानून का निर्माण करनेवाला मानना तौहीद की अनिवार्य अपेक्षाओं में से है और अल्लाह अपने आदेश और क़ानून अपने रसूल के द्वारा भेजता है।

बाक़ी रहा आख़िरत का विषय तो वह तौहीद के अधीन विभिन्न पहलुओं से समाविष्ट है। आख़िरत अनिवार्यतः ख़ुदा के गुणों को अपेक्षित है। इस बात को याद रखना चाहिए कि आख़िरत की सारी रूह तौहीद है। जो लोग आख़िरत के क़ायल हैं, लेकिन साथ ही ख़ुदा के साझियों और उसके समक्ष सिफ़ारिशियों को भी मानते हैं, जो उनके विश्वासानुसार उनको बख़्शवा लेंगे, उनके लिए आख़िरत का अक़ीदा बिल्कुल बेजान है। वे ख़ुदा के सामने उत्तरदायी होने की ज़िम्मेदारी और उसके न्याय के क़ानून के प्रकट होने से वैसे ही निश्चित हो जाते हैं जैसे आख़िरत के इनकार करनेवाले। अरबवासियों, यहूदियों और ईसाइयों का यही हाल था। उन्होंने आख़िरत के सारे महत्व को सिफ़ारिश और कफ़्फ़ारा (पश्चात्ताप) के अक़ीदे से झुठला दिया था। यही कारण है कि क़ुरआन मजीद में तौहीद और आख़िरत का वर्णन प्रायः साथ-साथ होता है, क्योंकि आख़िरत की

सारी हक़ीक़त हवा हो जाए, अगर तौहीद की अवधारणा में ज़रा-सा विकार आ जाए। इससे ज्ञात हुआ कि दीन की सारी व्यवस्था तौहीद से आलोकित है। इस शरीर की आत्मा और इस आँख की पुतली तौहीद ही है। इसके बिना न कोई अक़ीदा प्रभावकारी है, न कोई कर्म फलदाई। यहीं से धर्म का पहला क़दम उठता है और फिर यहीं उसका अन्तिम क़दम पड़ता है। यह धार्मिक परिधि है और धर्म उसी समय तक सुरक्षित है जब तक इस परिधि के अन्दर है। यही कारण है कि सूरा-17 (बनी इसराईल) में जहाँ प्राकृतिक धर्म के आदेश व क़ानूनों की शिक्षा दी गई है, उसका आरम्भ "अल्लाह के साथ किसी दूसरे पूज्य को साझीदार न बना" से किया और फिर सारी बातें बयान करने के बाद फ़रमाया कि "ये बातें उस तत्वदर्शिता में से हैं जो तेरे रब ने तेरे ऊपर अवतरित की हैं और अल्लाह के साथ किसी दूसरे पूज्य को साझीदार न बना।" इससे ज्ञात हुआ कि दीन का आरम्भ और उसका अंत दोनों तौहीद हैं और शरीअतें व आदेश वास्तव में पूर्ण तौहीद तक पहुँचने के माध्यम और साधन हैं।

तौहीद के इसी महत्व के कारण हम देखते हैं कि दुनिया में जितने नबी आए सबने अपने आह्वान का आरम्भ तौहीद से किया और इसी बिन्दु पर इस तरह जमे रहे कि किसी हाल में भी इससे बाल बराबर सरकने पर राज़ी न हुए। विरोधियों ने लाख चाहा कि पैग़म्बर इस विषय में थोड़ी-सी नरमी अपना ले, थोड़ा-सा अपने व्यवहार में ढीला हो जाए, कम से कम उनकी मूर्तियों को तुच्छ बताने ही से रुक जाए तो वे आगे बढ़कर उससे समझौता कर लें, "ये तो चाहते हैं कि कुछ तुम झुको तो वे भी झुकें।" (68 : 9) लेकिन पैग़म्बर ने एक क्षण के लिए इसमें किसी प्रकार की नरमी पसन्द नहीं की। उन्होंने अपने विरोधों से पैग़म्बर को डराना चाहा और वह सब कुछ कर डाला जो उनके वश में था, लेकिन पैग़म्बर को उसकी जगह से हिला न सके। उन्होंने प्रलोभन के फन्दे डाले और रिश्वत में वह सब कुछ पेश किया जो वे पेश कर सकते थे, लेकिन उसे वश में न कर सके। कुलीनतम परिवार में विवाह, धन-दौलत के ढेर, सरदारी व बादशाही सारी ही चीज़ें पेश की गईं, लेकिन इन सब प्रलोभनों के जवाब में उनके सामने वही तौहीद की दावत पेश की गई। जब विरोधी इन उपायों में असफल रहे, तो उन्होंने अन्तिम हथियार उठा लिया और पैग़म्बर और उसके साथियों को मजबूर कर दिया कि वे अपने घर को, अपने कुटुम्ब को, अपनी जायदाद और संपत्ति को और अपने मुल्क व वतन को छोड़ दें। ख़ुदा के हर नबी ने इसको भी सहन कर लिया। क़ुरआन हमारे सामने मौजूद है, इसमें समस्त नबियों के हिजरत (प्रवास) के वृत्तांत बयान

किए गए हैं, हर नबी की ज़बान पर अपनी जाति को छोड़ते समय जो अन्तिम वाक्य जारी होता है, वह तौहीद का वाक्य होता है। यही चीज़ है जिसके लिए वह सब कुछ छोड़ता है और सबको छोड़कर केवल इसी अकेली चीज़ को अपनी सहचरता एवं साथ के लिए चुनता है। विचार करो, ऐसा क्यों है? क्या बात है कि पैग़म्बर और उसके साथी सब कुछ छोड़ देते हैं, मगर तौहीद पर आँच नहीं आने देते?

तौहीद की इस महानता का कारण वही है जो ऊपर के विभिन्न अध्यायों में बयान हो चुका है। तौहीद सबसे बड़े हक़ अर्थात् ख़ुदा के हक़ का इक़रार है, यही न्याय का आधार है। जो व्यक्ति इस हक़ को नहीं पहचानता वह किसी के भी हक़ को नहीं पहचान सकता, यहाँ तक कि वह अपने स्वयं के हक़ को भी नहीं पहचान सकता। उससे उसी प्रकार के अत्याचार होते रहेंगे जैसा कि वर्तमान युग के ज़ालिमों और अकृतज्ञ इनसानों के द्वारा घटित हो रहे हैं और जिसकी ओर हमने पिछले अध्याय में संक्षेप में संकेत किया है। अतः नबी जो सर्वथा सत्य और न्याय के आमंत्रण होते हैं वे तौहीद के मामले में किसी प्रकार की नर्मी कैसे सहन कर सकते हैं, जबकि तौहीद ही समस्त अधिकारों की बुनियाद है। वे इस मामले में न बाप को क्षमा कर सकते हैं, न चाचा को, न बेटे को, न पत्नी को। जो चीज़ भी इस हक़ के पालन में रुकावट बने, वह एक पत्थर है और आवश्यक है कि उस पत्थर को मार्ग से हटा दिया जाए।

नबियों के समस्त प्रयासों का उद्देश्य ख़ालिस तौहीद (विशुद्ध एकेश्वरवाद) की स्थापना है। वे दुनिया में इसी लिए आते हैं कि ख़ुदा के बन्दों को दूसरों की बन्दगी से छुड़ाकर ख़ालिस ख़ुदा का बन्दा बना दें। ख़ुदा के बंदे केवल ख़ुदा को स्रष्टा मानें, उसी को बादशाह कहें, उसी की बन्दगी करें, उसी का आज्ञानुपालन करें, उसी पर विश्वास एवं भरोसा करें, उसी से सहायता माँगें, नेमत मिले तो उसी का शुक्र अदा करें, मुसीबत आए तो उसी को पुकारें। चाहत हो या भय, आशा हो या निराशा, हर हाल में उनकी नज़र उसी की ओर हो। वे स्वयं को पूर्णतः उसी के लिए समर्पित कर दें। उनका प्रेम उसके प्रेम के अधीन, उनकी पसन्द उसकी पसन्द के अंतर्गत हो। उसके स्वरूप में, उसके गुणों में और उसके अधिकारों में, किसी पहलू से भी किसी को साझीदार न बनाएँ; न किसी फ़रिश्ते को, न किसी ज़िन्न को, न किसी नबी को, न किसी वली को, न किसी और को, न स्वयं अपने व्यक्तित्व को।

तौहीद की यह हक़ीक़त स्पष्ट हो जाने के बाद यह बात बिल्कुल साफ़ हो गई

कि मूल वास्तविकता की दृष्टि से तौहीद दीन का केवल एक अंश या अंग नहीं है, बल्कि यह सम्पूर्ण धर्म को अपनी परिधि में लिए हुए है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि तौहीद से हटकर धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती। ख़ुदा के नबी यहीं से अपना काम आरम्भ करते हैं और इसी पर समाप्त करते हैं। यही रहस्य है कि क़ुरआन मजीद तौहीद (एकेश्वरवाद) से आरम्भ होता है और तौहीद ही पर समाप्त होता है। क़ुरआन की प्रथम सूरा फ़ातिहा है जिसकी मूल आत्मा ख़ुदा का विशुद्ध कृतज्ञता प्रकाशन और पूर्ण रूप से अपने को उसे समर्पित कर देना है और अन्त में सूरा नस्र में मक्का-विजय की शुभ-सूचना और सूरा लहब में बातिल की पराजय की भविष्यवाणी के बाद सूरा इख़लास रखी गई है, जो विशुद्ध तौहीद की सूरा है। यह इस हक़ीक़त की तरफ़ इशारा है कि धर्म का केन्द्र-बिन्दु तौहीद है और अब धर्म अपने केन्द्र पर पहुँच गया। इसके बाद मुअव्वज़तैन (सूरा फ़लक़ और सूरा नास) रख दी गई हैं जो शैतान की आफ़तों से तौहीद के ख़ज़ाने की रक्षा कर रही हैं। क्योंकि यह मालूम है कि शैतान को आदम की सन्तान से जो ईर्ष्या है उस ईर्ष्या के जोश में उसकी सबसे बड़ी कोशिश यह है कि इनसान को तौहीद के बिन्दु से हटा दे। अतः इसी कारण उसने कहा था —

"मैं इनके लिए तेरी सीधी राह पर घात में बैठूँगा।" (क़ुरआन, 7 : 16)

अर्थात् उन्हें तौहीद के मार्ग पर क़ायम न रहने दूँगा ।

"और तू उनमें से अधिकतर को अपना कृतज्ञ न पाएगा।" (क़ुरआन, (7 : 17)

अर्थात् वे शिर्क (बहुदेववाद) में ग्रस्त हो जाएँगे।